आधुनिक सभ्यता का विकल्प क्यों और कैसा

- यूपी की राजनीति का नया अध्याय
- देश को एक बूचड़ख़ाना तो नहीं बना रहे?
- गोरक्षनाथ पीठ : समत्व से हिंदुत्व तक
- चंपारण सत्याग्रह के सौ साल
- मार्च फॉर साइंस
- सजप राष्ट्रीय सम्मेलन

पोलिश कवयित्री विस्साव शिंबोर्स्का की दो कविताएं

सरहदें

कहीं से भी तो पुख्ता नहीं हैं
मनुष्य निर्मित राज्यों की सीमाएं।

बादल रोज उनके पार आते-जाते हैं
कोई सजा नहीं देता उन्हें।
मनों रेत इस देश से उड़ कर उस देश चली जाती है।
कितने कंकड़-पत्थर
हमारे पहाड़ों से लुढ़कते हुए उनके मैदानों में बस जाते हैं-
बिना किसी परमिट-परवाने के।

कहां तक गिनाऊं उन पंछियों के नाम
जो राज्य-सीमाओं पर दिन-रात उड़ते रहते हैं
या बेखौफ फुदकते रहते हैं सुरक्षा चौकियों पर।
वह देखो, कंटीले तारों पर बैठी एक टिटहरी
उसकी पूंछ स्वदेश में है और चोंच विदेश में।

इसी तरह असंख्य कीड़े-मकोड़े भी हैं
लेकिन मैं सिर्फ उस चींटी का जिक्र करूंगी
जो सीमारक्षक के जूतों के बीच से चली जा रही है
'कहां से आई हो?' और 'कहां जाना है?'
जैसे सवालों से बेपरवाह।

एक नजर डालते ही आप जान जाएंगे
कि यह अफरा-तफरी हर महाद्वीप में फैली हुई है।
दूर नदी-तट पर एक पीपल खड़ा है
जो दिन-दहाड़े लहरों पर
अपने पत्तों की तस्करी करता रहता है।
और वह ऑक्टोपस
जो अपनी लंबी बांहों से पानी को चीरते हुए
जब चाहे हमारी जल-सीमा का उल्लंघन कर देता है।

सच तो यह है
कि किसी सर्वव्यापी व्यवस्था की बात करना ही मुहाल है
जबकि हम यह भी नहीं बता सकते
कि ठीक कौन-सा तारा किसके लिए चमकता है।

उस कोहरे की बात ही क्या
जो हर वक्त आवारागर्दी करता रहता है!
और उस रेत को ही लो
जो रेगिस्तान भर उड़ती फिरती रहती है
मानो बंटवारा कभी हुआ ही न हो!
वायु-लहरियों पर तैरती हुई आवाजें सुनी हैं?
किसके कानों में क्या गुनगुनाती हैं
कोई नहीं जानता।

सिर्फ मनुष्य ही सच्चे अर्थों में विदेशी हो सकता है।
बाकी सब तो बस वनस्पतियों का ढेर,
अराजक कीड़े-मकोड़े और बेमानी हवा है!

हमारे जमाने के बच्चे

हम अपने जमाने के बच्चे हैं
और हमारा जमाना राजनीतिक जमाना है।
सारा दिन और सारी रात,
सभी बातें
मेरे, तुम्हारे और उसके मसले
राजनीतिक मसले हैं।
तुम चाहो या न चाहो
तुम्हारे वंश का अतीत एक राजनीतिक अतीत है,
तुम्हारी त्वचा का रंग राजनीतिक है,
तुम्हारी दृष्टि का कोण राजनीतिक है।

तुम जो कुछ कहो उसकी एक और ध्वनि भी होती है।
एक और आवाज होती है तुम्हारी खामोशी की
लिहाजा तुम कुछ कहो या न कहो
बच नहीं सकते राजनीति से।

जब तुम किसी जंगल की ओर जाते हो
तब भी एक राजनीतिक कदम उठाते हो
एक राजनीतिक प्रदेश में।
गैर-राजनीतिक कविताएं भी राजनीतिक हैं
और हम पर चमकता हुआ चांद भी सिर्फ चांद नहीं है।
जिएं या न जिएं
...यह एक सवाल है।
हालांकि इससे हाजमा खराब हो जाता है,
फिर भी यह हमेशा से
एक राजनीतिक सवाल ही रहा है।

राजनीति के दायरे में आने के लिए
जरूरी नहीं कि तुम मनुष्य ही हो।
तुम कच्चा माल, प्रोटीनयुक्त आहार,
मिट्टी का तेल, या लकड़ी की मेज ही क्यों न हो
तुम पर महीनों बहस हो सकती है
एक अंतहीन बहस
कि जिंदगी और मौत के फैसले
गोल मेज पर हों या चौकोर मेज पर।

...और इस बीच लोग दम तोड़ते रहते हैं,
चौपाए मरते रहते हैं,
मकान जलते रहते हैं,
और फसलें तबाह होती रहती हैं।
सब कुछ होता रहता है उसी तरह
जिस तरह उस दौर में होता था
जब जमाने का रंग
इतना राजनीतिक नहीं था।

हिंदी रूपांतर- विजय अहलूवालिया

दिसम्बर 2016, वर्ष 40 अंक 1-4 (संयुक्तांक)

खाता नाम - सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा - सोनारपुरा, वाराणसी
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या **40170100005458**
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहाँ दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं
S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
इस खाते में पैसा जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना
इ-मेल अथवा मोबाइल-08765811730/ 08004085923

कार्यालय
डी. 28/160, पाण्डे हवेली, वाराणसी-221001
फोन : 08004085923 (संपादन),
08765811730 (प्रबंध)
e-mail- varta3@gmail.com

इस अंक में

सदस्यता शुल्क : एक प्रति : 20/-, वार्षिक शुल्क : 150/-, संस्थागत वार्षिक शुल्क : 200/-
पाँच वर्षीय शुल्क : 600/-, आजीवन शुल्क : 2000/-

सम्पादकीय

यूपी की राजनीति का नया अध्याय

उत्तर प्रदेश चुनाव बीते ज्यादा दिन नहीं हुये, पर लगता है प्रदेश की राजनीति का एक पूरा अध्याय बीत गया है। भाजपा की अप्रत्याशित जीत से नरेन्द्र मोदी और अमित शाह का कद बढा और योगी आदित्यनाथ समेत लगभग पूरी नई टीम को प्रदेश की बागडोर सौंप दी गई। यह सही है कि मीडिया, खासकर इलेक्ट्रानिक मीडिया योगी के प्रति दीवाना लगता है और संन्यासी से राजनेता बने योगी जी कुछ ज्यादा ही चर्चा पा रहे हैं। भाजपा के उनके प्रतिद्वन्द्वी उनके सामने तेजी से बौने होते जा रहे हैं। पर प्रदेश की राजनीति के उनके दूसरे दलों के प्रतिद्वन्द्वी जिस हालत में आते जा रहे है वह तो चिंताजनक है। और अगर हम अभी मुल्क में नरेन्द्र मोदी के मुकाबले किसी दल और नेता को नहीं देखकर ही हैरान होते हैं। यह स्थिति तो तीन साल में आई है। योगी राज को आए हुए तीन महीने नहीं हुए उनके वे सारे प्रतिद्वन्द्वी कहीं नजर नहीं आते हैं जो कल तक सरकार बनाने और हर गांव-मुहल्ले तक अपनी पकड बताते नहीं थकते थे। और सचमुच उनके मुकाबले भाजपा तब कुछ दिखती भी नहीं थी।

जी हाँ, समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस से गठबन्धन करके दोबारा सत्ता में रहने का जुगाड किया और हमीं सब लोगों को लगता था कि अखिलेश यादव ने बड़ी होशियारी से एंटी-इंकम्बेंसी को रोक लिया है-छुपा दिया है। मुलायम-शिवपाल से उनकी लडाई भी इसमें मददगार लगती थी। और कांग्रेस के आ जाने के बाद तो लगता था कि मुसलमानों के एकजुट समर्थन ने सपा को बढत दिला दी है। अब चुनाव नतीजे आते ही सपा का सीरजा बिखरता लग रहा है। कांग्रेस ने गठबन्धन को भूल कहकर अपनी नई रण अनीति का इशारा कर दिया है। और कांग्रेस के साथ न होने से मुसलमानों का समर्थन बदलेगा/बिखरेगा। और परिवार की लडाई अब ज्यादा रंग लेती दिखती है। शिवपाल अपनी पार्टी की एलान कर रहे हैं तो 'राजदरबार' की छोटी बहु भी अलग राग अलाप रही है। और मुलायम सिंह को अभी भी भ्रम है कि वे प्रधानमंत्री पद की रेस में हैं सो बेचारे कभी अखिलेश को कोसते हैं, कभी शिवपाल से मुँह मोड़ते हैं। सो पार्टी क्या करेगी उसे ही पता नहीं है, लेकिन 2019 के चुनाव तक यह स्थिति भी रहेगी यह कहना मुश्किल है। अब कांग्रेस सपा की दोस्ती पर तो सवाल है ही अगर मुलायम अखिलेश अलग हुये तो किसे फायदा होगा कहना मुश्किल नहीं है।

पर उससे भी ज्यादा मुश्किल काम सत्ता हाथ में आई मानकर किसी को भी मुँह न लगाने वाली मायावती की पार्टी बसपा को लेकर भविष्यवाणी करना है। खुद माया के लिये लोक सभा जीतना मुश्किल है और राज्यसभा में जाने के लिये दूसरे दलों पर निर्भर होना होगा। और आज पार्टी की अन्दरूनी लडाई, आय से अधिक वाले मुकदमे और जगह-जगह से आ रही अवैध धन की सूचनाएँ मैडम का क्या हाल करेंगी किसी को नहीं मालूम। अगर ये सब जानकारियाँ भर कांग्रेस के पास थीं तो उसने एक साथ सपा-बसपा को साध रखा था और उनके समर्थन से सरकार चलाती गई थी तो चालाक मोदी जी क्या करेंगे यह समझा जा सकता है। और चुनाव नतीजों से यह साफ लग रहा है कि बसपा को सिर्फ दलित समर्थन बच गया है। जाहिर है, मायावती 2019 में कोई दावेदार नहीं होंगी तब दलित वोटर भी अपने हिसाब से फैसला करेगा। उसकी एक जमात तो लोक सभा चुनाव के समय से यह नरेन्द्र मोदी के प्रति आकर्षित लगती है। पर ज्यादा मिलिटैंट समूह भाजपा विरोधी है। सम्भव है बसपा के कमजोर पड़ते जाने से दलित जमात में भी बिखराव बढे। नसीमुद्दीन सिद्दीकी का टेप जारी करना कोई नए तथ्य सामने नहीं ला रहा है, पर अब सपा की कमजोरी और बिखराव को बताता है।

पर यह बिखराव भाजपा, आदित्यनाथ और नरेन्द्र मोदी के हाथ में लड्डू ही ला दे यह जरूरी नहीं है। समाज का एक बडा समूह अभी भी भाजपा और मोदी से असहमत ही नहीं आतंकित है। वह अवसर मिलते ही उनके खिलाफ गोलबन्द होने और वोट देने का मौका नहीं चूकेगा। और जिस विपक्ष को हम पस्त और बिखरा मान रहे हैं उसके भी नेता ऐसे मूर्ख नहीं हैं कि अपने पैरों पर कुल्हाडी मार लें। हमने देखा है कि चुनाव नतीजे आते ही भतीजे और बुआ, अर्थात अखिलेश और मायावती के सुर बदले हैं। यह एहसास सबको हुआ कि बिहार की तरह गोलबन्दी होती तो भाजपा को हराया जा सकता है। और इस नए एहसास के साथ ही मायावती को राज्यसभा भेजने में सपा की मदद की चर्चा भी चल ही रही

है। पर उस चुनाव से भी पहले राष्ट्रपति का चुनाव होना है और वह भाजपा तथा नरेन्द्र मोदी विरोधी सारे दलों के गोलबन्द होने का अवसर बन सकता है। इस दिशा में पहल शुरू हो चुकी है। इसमें कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी तो एक तरफ रहने ही वाले हैं। यह चीज उत्तर प्रदेश की आगे की राजनीति के लिये नए समीकरण बनाएगी।

और यह भी लग रहा है कि पार्टियाँ साथ आए न आएँ मतदाताओं के कुछ समूह पास आने शुरू हो गए हैं और वे दबाव बनाएंगे कि नेता अपने अहँ छोड़ें तथा साथ आकर काम करें। मुसलमान तो योगी राज के आने से हक्का-बक्का हैं। ज्यादातर मुसलमान खौफ में हैं। वे लोक सभा चुनाव में बिखराव नहीं चाहेंगे। यह हालत दलितों की भी बन रही है। हालाँकि यह भी तथ्य है कि अब मोदी-शाह की जोड़ी सबसे ज्यादा दलितों पर ही काम करने वाली है। पिछड़ों में यादव सपा से अलग हुए हों इसका कोई संकेत नहीं है। और अगड़ों में ब्राह्मण भाजपा में पहले वाली स्थिति न मिलने से उतने खुश नहीं है। अगर यादव तक की ही गिनती की जाए तो यह हिस्सा पचास फीसदी वोटों का हो जाता है। और मोदी हों या अमित शाह अगर पचास फीसदी खिलाफ वोटर हों तो कैसे लडाई जीतेंगे। पर नेतृत्व देने वाले नेता लोग और वोट समेटने वाली पार्टी मशीनरी भी होनी चाहिये। अभी तो सपा-बसपा दोनों के नेता बदहाल हैँ और मशीनरी बिखरती दिख रही है।

–अरविन्द मोहन

●

आधुनिक सभ्यता का विकल्प क्यों और कैसा

सच्चिदानंद सिन्हा

(समाजवादी जन परिषद बिहार द्वारा पटना में 'किशन पटनायक स्मृति व्याख्यान' आयोजित किया गया था। वरिष्ठ समाजवादी साथी सच्चिदानंद सिन्हा ने इस वर्ष का व्याख्यान दिया। उनका भाषण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है)

बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में वैकल्पिक व्यवस्था का अर्थ मूलतः पूँजीवादी व्यवस्था का विकल्प ही माना जाता था, यानी साम्यवादी व्यवस्था। इस विचार से प्रभावित ठोस रूप में एक विकल्प तो रूस में 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद बन गया था। इस क्रान्ति के नेता मार्क्सवादी थे और उनका गन्तव्य साम्यवाद था। लेकिन हकीकत में एक नयी तरह की गैर बराबरी और तानाशाही की व्यवस्था कायम हो रही थी। इसके समानान्तर ही यूरोप में सोशल डेमोक्रेसी और ब्रिटेन में फेबियन प्रभाव वाली (जो धीरे-धीरे पर दृढ़ बदलाव की बात करती थी) लेबर पार्टी के प्रयोग भी समाजवाद के ही रूप माने जाते थे। लेकिन ये विकल्प हमारे लिए खास कर भारत के समाजवादियों के लिए प्रासंगिक क्यों नहीं लग रहे थे?

ऐसा नहीं कि इन विकल्पों का प्रभाव भारत में कभी नहीं रहा हो। भारत के समाजवादियों में सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना काल में जब 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना काल में जब 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी थी - मार्क्सवाद का प्रभाव काफी था। पार्टी के दो सबसे प्रभावशाली नेता आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण मार्क्सवादी थे। जैसे-जैसे जानकारियाँ मिलने लगीं इसके प्रति मोह भंग होने लगा और फिर किसी वैकल्पिक व्यवस्था और संक्रमण की अलग नीति की तलाश शुरू हुई। लेकिन यह धारणा कि आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के समतामूलक और लोकतांत्रिक प्रबन्धन से ही एक मानवीय समाज व्यवस्था बनेगी, खतम नहीं हुई। क्रान्ति के रूस जैसे अधिनायकवादी पतन से बचने के लिए हिंसक क्रान्ति से परहेज पर्याप्त माना गया। इसके लिए कुछ काल तक ब्रिटेन की लेबर पार्टी के संगठन की खुली सदस्यता का ढाँचा और संसदीय मार्ग को अपनाने की कोशिश हुई। 1949 के आस-पास खुली सदस्यता वाला ढाँचा, जिसमें मजदूर और किसान संगठनों को भी सदस्यता से जोड़ा गया, अपनाया गया। लेकिन 1952 में आजाद भारत के प्रथम आम चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी के नतीजे काफी निराशाजनक रहे।

संसदीय चुनाव के निराशाजनक परिणाम के तो अनेक स्थानीय और तात्कालिक कारण हो सकते थे, लेकिन कुछ संशय विकास के ढाँचे को लेकर ही पैदा होने लगा। रूस के अधिनायकवादी पतन के पीछे कुछ बुनियादी आर्थिक कारण ढूँढ़े जाने लगे। इसी के साथ यह संशय भी पैदा हुआ कि यूरोप-अमेरिक का आर्थिक ढाँचा भारत में प्रासंगिक हो पायेगा क्या? डॉ0 लोहिया ने भारत एवं अन्य पिछड़ी

अर्थव्यवस्थाओं के औद्योगिक विकास के मूल अन्तर्द्वन्द्व की ओर इशारा किया : यानी कि जो विकास यूरोप में हो रहा था उसका सीधा संबंध एशिया, अफ्रीका आदि देशों में होने वाले शोषण से था। फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया में प्रति व्यक्ति पूँजी निवेश में भारी अंतर है और यूरोप और अमेरिका के पैमाने पर पूँजी निवेश के आधार पर हम अपना विकास नहीं कर सकते। उन्होंने छोटी मशीन की तकनीकी (जो डिजल या बिजली पर आधारित हो) का प्रस्ताव दिया। लेकिन इस सुझाव के विस्तार में जाने का उन्हें मौका नहीं मिला। आज जब हम पर्यावरण समस्या से रूबरू हैं तो डिजल या दूसरे उपक्रमों से बिजली उत्पादन की समस्याएँ भी हमारे सामने उपस्थित हैं। लेकिन अस्पष्ट रूप से औद्योगीकरण के लिए संसाधनों की सीमा जरूर उभर कर सामने आयी।

पूँजी निवेश की विषमता की इस समस्या पर जब हम गहराई से विचार करेंगे तो वर्तमान सभ्यता के संकट के मूल तक पहुँचेंगे और फिर वहीं से विकल्प की दिशा भी दिखाई देने लगेगी। आखेट पर आधारित आदिम समाजों के बाद पूँजी निवेश किसी न किसी रूप में प्रारम्भ से ही है जब कृषक समाज में किसान अगली फसल के लिए बीज संजोता है तो यह उसकी पूँजी होती है। इसी तरह उसके छोटे उपकरण भी उसकी पूँजी होती है। इसी तरह जब पशुपालक मेमने या बछड़े का लालन-पालन करता है तो भविष्य के लिए ऊन पैदा करने वाले भेड़ या सवारी के लिए बैल की पूँजी तैयार कर रहा होता है— हालाँकि आधुनिक अर्थ में पूँजी या पूँजी निवेश की कोई कल्पना उसक मन में नहीं होती। यह सब प्रकृति के स्वाभाविक विकास प्रक्रिया के रूप में होता है और प्रकृति के जीवन चक्र में ही मनुष्य भी अपने जीवन का आधार यानी ऊर्जा ग्रहण करता है (भोजन के लिए अन्न, माँस आदि)। आज पूँजी को हम जिस तरह उत्पादन प्रक्रिया, विशेष कर औद्योगिक उत्पादन प्रक्रिया या विशाल पैमाने पर मशीनीकृत कृषि फार्मों की उत्पादन प्रक्रिया-से जोड़ते हैं, यह बिलकुल अलग तरह की चीज है। इसके पीछे का जीवन दर्शन भी अलग है।

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता, जिसकी शुरुआत अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति से हुई, पूर्ववर्ती सभ्यताओं से यह एक स्पष्ट विभाजन रेखा प्रस्तुत करती है। इसके पहले की जीवन पद्धति को, अपनी भिन्नताओं के बावजूद, जैविक विकास पद्धति कहा जा सकता है। जैसे जीव जन्तु, पेड़ पत्ते प्रकृति से जीवन और इसके नवीकरण की मूल उर्जा और संरक्षण प्राप्त करते हैं, मनुष्य भी अपने औजारों और उपक्रमों के लिए प्रकृति के स्वाभाविक उर्जा प्रवाह पर ही निर्भर करता था। घोड़े और बैलों के सहारे चलने वाले वाहनों और समुद्रों में दूर दूर तक नाव और जहाज से होने वाली यात्राओं के पीछे की पवन-उर्जा भी प्रकृति जन्य थी। जंगलों में स्वतः लगने वाली आग ने मनुष्य को आवश्यकता के अनुसार छोटे पैमाने पर आग जलाने की सीख दे दी, जो उसे ठंढ से बचाता था और कच्चे अखाद्य वस्तुओं को खाद्य बनाने में मदद करता था। प्राचीन दुनिया की बड़ी सभ्यताएँ भी इन्हीं प्रकृति आधारित शिल्पों की परत दर परत जोड़ने से बनी थी। सभ्यताओं के उदय के साथ मानव संबंधों में एक नया कारक जरूर जुड़ गया था। विशिष्ट बनने की महत्वाकांक्षा से कबीलों के मुखिया से सरदार, फिर राजे महराजे और शाहंशाहों के बनने का सिलसिला शुरू हुआ। मानव जीवन अब भी प्रकृति पर निर्भर था और अपने तमाम तामझाम के बावजूद मनुष्य प्रकृति के सामने नतमस्तक था। इसे चुनौती देना हास्यास्पद था जैसा राज कन्युट और सागर तरंग की कथा में व्यक्त था।

अठारहवीं सदी के यूरोप में, जब औद्योगिक क्रान्ति शुरू हुई, मनुष्य की सोच में एक बड़ा बदलाव आया। या यों कहें कि मनुष्य की सोच में बदलाव से औद्योगिक क्रान्ति आयी। ज्ञान, जो सभी प्राचीन सभ्यताओं में मनुष्य और मनुष्य एवं मनुष्य और प्रकृति के बीच संवाद सामंजस्य स्थापित करने का माध्यम था, अब प्रभुत्व स्थापित करने का साधन बन गया। एक नयी अवधारणा, ''ज्ञान प्रभुत्व का स्रोत है'' (नौलेज इज़ पावर), मानव चिंतन का मूल सूत्र बन गया।

औद्योगिक क्रान्ति के पीछे कोयला की ऊर्जा से चलने वाले वाष्प यंत्रों की अहम् भूमिका थी। अतः कोयले से प्राप्त ऊर्जा और इससे चलने वाले यंत्रों को नियंत्रित करने वाली सैद्धान्तिकी को विकसित करना अनिवार्य हो गया। भारत और यूनान से अरब देशों के माध्यम से प्राप्त गणित के ज्ञान ने यूरोप को भौतिकी के विकास का एक नया तोहफा दिया। इसी पृष्ठ भूमि में न्यूटन के गति सिद्धान्त ने नये मशीनों को कार्यपद्धति और ऊर्जा को नियंत्रित करने का एक नया औजार लोगों के हाथ में दे दिया। न्यूटन के गति सिद्धान्त ने यह बतलाया कि संसार की जितनी वस्तुएँ हैं अपनी गति में एक ही निश्चित नियम से बँधी है जो यह तय करता है कि धरती अपनी धुरी पर कैसे चलती है और वृक्ष पर से सेब नीचे क्यों गिरता है। यानी पिंड से ब्रह्माण्ड तक सभी वस्तुओं को संचालित करने वाली एक ही शक्ति है जिसे गणित के नियमों से समझा और निर्धारित किया जा सकता है।

अब भौतिक पदार्थों से परे जो ऐसे ही नियमों से मनुष्य के व्यवहारों को समझ कर खास दिशा में मोड़ने की आकांक्षा जगी। ब्रिटेन में ही जो औद्योगिक क्रान्ति की जनक भूमि थी, पदार्थ कणों की तर्ज पर समाज को बनाने वाले मानव-कणों को भी ऐसे नियमों के तहत लाने की आकांक्षा जगी। अगर पदार्थों को गति सिद्धान्त से नियमित किया जा सकता है तो मनुष्य को क्यों नहीं? ब्रिटेन में जॉन लॉक ऐसे सिद्धान्त के आग्रही थे। उन्होंने यह विलक्षण सूत्र दिया कि प्रकृति को निरस्त करना सुख की ओर संक्रमण का मार्ग है। इसी क्रम में एक कदम आगे बढ़ ऐडम स्मिथ ने मानव संबंधों में अर्थ की केन्द्रीयता को भी बतलाया कि वस्तुओं में मूल्य का निर्धारण उसमें लगे मानव श्रम से होता है। इसी की अगली कड़ी मार्क्स का मूल्य का श्रम सिद्धान्त और अतिरिक्त मूल्य पूँजीवादी शोषण का सिद्धान्त था। जॉन लॉक से लेकर मार्क्स तक प्रकृति पर विजय और इसे बदल डालने का आग्रह दिखाई देता है। फायरबाख पर अपनी थीसिस में मार्क्स ने लिखा— ''दार्शनिकों ने अब तक दुनिया को विविध रूप से परिभाषित करने की कोशिश की है जब कि जरूरत इसे बदलने की है।'' इस सारी चिंतन प्रक्रिया का निचोड़ था प्रकृति पर विजय पाना। सभ्यता के विकास का अर्थ था प्राकृतिक संसाधनों का उत्तरोत्तर तेज रूपान्तरण और उपभोग लायक बनाना। प्रकृति पर विजय और औद्योगिक सभ्यता का मार्क्स भी प्रशंसक था। उसने लिखा :

''बुर्जुआ वर्ग ने अपने सौ साल के वर्चस्व में कहीं बड़ी और विशाल उत्पादक शक्ति पैदा की है बनिस्बत पहले की सभी पीढ़ियों ने सम्मिलित रूप से की थी। प्रकृति की शक्तियों को मनुष्य के नियंत्रण में लाना— मशीन, उद्योग और विद्युत से तार सेवा, पूरे महादेशों को खेती के लायक बनाना, नदियों से सिंचाई व्यवस्था और सबसे बढ़कर आबादियों की बाढ़। किस शताब्दी ने यह कल्पना भी की थी कि सामाजिक श्रम के गर्भ में ऐसी उत्पादक शक्तियाँ छिपी थीं।'' (कम्युनिस्ट घोषणा पत्र)

यह मान्यता स्थापित हुई कि भौतिक जगत की तर्ज पर मानव उद्यम और मानव संबंध भी कुछ वैज्ञानिक संबंधों से बँधे हैं और उन्हें निर्देशित किया जा सकता है। इस सोच में 'टौटैलिटेरियन सिस्टम' का आधार देखा जा सकता है। डार्विन के प्राकृतिक चयन (नेचुरल सेलेक्शन) के सिद्धान्त को थोड़ा मोड़ कर टी.एच. हक्सले ने ''सर्वाइवल ऑफ दे फिटेस्ट'' यानी जो सबसे सक्षम है उनके जीवित रहने के सिद्धान्त में बदल दिया। इससे पूँजीवादी प्रतियोगिता को ''लेसे फेरे'', यानी शोषण के निर्बाध अधिकार का अर्थ दे दिया गया।

मूल्य का श्रम सिद्धान्त हमारे चारों ओर फैले उत्पादन और विपणन में इतना साफ दिखाई देता है कि इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हमारे भोजन, हमारे वस्त्र और हमारे आवास निर्माण में मानव श्रम की भूमिका इतनी स्पष्ट है कि इसे नकारा नहीं जा सकता और मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त भी इसका अनिवार्य विस्तार है। जिस बात पर समाजवादियों ने कम ध्यान दिया वह यह हकीकत है कि मानव श्रम भी मूलतः प्राकृतिक ऊर्जा का ही एक रूप है और यह भी उसी तरह शरीर के भीतर की रासायनिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होता है जैसे कोयला या तेल के जलने से मशीनों की ऊर्जा। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से उद्योगों या निर्माण क्षेत्र में मानव ऊर्जा की जगह कोयला, तेल या विद्युत की ऊर्जा की मात्रा इतनी विशाल हो गयी है कि मानव ऊर्जा का महत्व कुछ आदिम व्यवस्थाओं या वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के हाशिये के उद्यमों को छोड़ बिलकुल नगण्य हो गया है। इतना ही नहीं औद्योगिक व्यवस्थाएँ लगातार मानव श्रम के विस्थापन में लगी हैं। जितना बड़े पैमाने पर अधुनातम तकनीक पर आधारित मशीनों का इस्तेमाल होता है उसी अनुपात में मानव श्रम दानी मनुष्य व्यवस्था के लिए अप्रासंगिक होते जाते हैं। नये उद्योगों में मानव श्रम या मानव बुद्धि की भूमिका ऊर्जा संचरण में नियंत्रण भर की होती है : लगभग उतनी ही जितनी यातायात के भारी ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करने में या दिशा देने में ट्रैफिक सिगनल की। ट्रैफिक सिगनल के निर्देशन के लिए लगी अति अल्प ऊर्जा—लाल, पीले या हरे रंग में बदलने की ऊर्जा—लाखों करोड़ों टन के भार के वाहनों को रोक देती है या किसी दिशा में मोड़ देती है; और यह नियंत्रक ऊर्जा थोड़े से लोगों के पास ही सिमट गयी है। आधुनिक औद्योगिक समाज में मानव श्रम की न्यूनता, और इसी अनुपात में आम आदमी की बढ़ती हीनता, आधुनिक समाज की एक सच्चाई है जिसकी ओर कम ध्यान दिया गया है और संभवतः, आधुनिक सभ्यता का मूल संकट भी है।

हमारी औद्योगिक व्यवस्था एवं आधुनिक तकनीक और मशीनों पर निर्भर कृषि व्यवस्था पर जब हम नजर डालते हैं तो उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं पर लगे असली मूल्य का आकलन करना असंभव हो जाता है। इसलिए, क्योंकि इसका पैमाना पूरे प्राकृतिक परिवेश पर लादे गये बोझ से ही निर्धारित हो सकता है और यह बोझ उत्पादन या विपणन प्रक्रिया में लगी मानव श्रमशक्ति या पशुबल की

तुलना में अपरिमेव सिद्ध होने लगता है। पूरी तरह भारी मशीनों और अत्याधुनिक रासायनिक उर्वरकों पर आधारित हजारों एकड़ भूमि पर होने वाली, चमत्कारी लगने वाली कृषि पर जब हम विचार करते हैं तो इसका ऋणात्मक नतीजा स्तम्भित करने वाला लगता है। दरअसल अत्याधुनिक औद्योगिक खेती में निवेशित ऊर्जा के मुकाबले आय में मिलने वाली ऊर्जा अत्यन्त ही कम होती है। अपनी बहुचर्चित पुस्तक ''इन्ट्रोपी, ए न्यू वर्ल्ड व्यू'' में जेरेमी रिफ्किन लिखते हैं :

''खेती करने वाला एक साधारण किसान आम तौर से एक कैलोरी ऊर्जा खर्च कर दस कैलोरी के बराबर उत्पाद अर्जित करता है। पर यह हकीकत है कि आयोवा (अमरीका का एक राज्य) का एक (अधुनातन खेती करने वाला) काश्तकार प्रत्येक कैलोरी मानव श्रम के निवेश से 6000 कैलोरी तक उत्पादन कर सकता है। लेकिन उसकी इस तरह दिखाई देने वाली क्षमता बिल्कुल भ्रम साबित होती है, जब इस प्रक्रिया में खर्च किये गये सभी तरह की ऊर्जा का आकलन होता है। सिर्फ एक डब्बा मक्का में, जिसमें 270 कैलोरी ऊर्जा होती है, वह काश्तकार 2770 कैलोरी ऊर्जा निवेश करता है, जिसका बड़ा हिस्सा फार्म की मशीनरी चलाने में एवं रासायनिक उर्वरक और कीट नाशकों के रूप में खर्च होता है। इस तरह अमेरिकन काश्तकार अपनी उपज में प्रत्येक कैलोरी ऊर्जा उत्पादन में दस कैलोरी ऊर्जा खर्च करता है।''

इसी लेखक के मुताबिक मशीनीकरण की प्रक्रिया अत्यधिक तेज हुई है और 1950 से 1971 के बीच फार्म के मशीनों पर निवेश 12.1 अरब डॉलर से बढ़कर 38.8 डॉलर हो गया है। इस प्रक्रिया में धीरे-धीरे किसान खेती से निष्कासित हुए हैं और कृषि पर विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठान हावी हुए हैं।

अमेरिका भूमि और दूसरे संसाधनों से भरपूर एक अत्यन्त ही अमीर देश है। वह अपने काश्तकारों के घाटे की भरपाई व्यापार एवं दूसरे उद्योगों से अर्जित धन से कर सकता है। फिलहाल मशीनीकरण के सहारे वह अपने विशाल कृषि क्षेत्र की खेती अपनी अबादी के महज पाँच प्रतिशत मानव श्रम से कर सकता है। लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ इस तरह की औद्योगिक कृषि की समस्याओं का समाधान भी उद्योग धंधों की तरह संसाधन पर सामूहिक आधिपत्य कायम करने और लोगों के बीच की गैर-बराबरी दूर करने के उपाय तक ही सीमित रही। सोवियत यूनियन और चीन के प्रयोगों के नतीजों को देखने के बाद लोगों ने ऐसे प्रयोगों की चर्चा भी बन्द कर दी है। क्योंकि ऐसे विशाल केन्द्रीकृत कृषि के अन्य दुष्परिणामों के साथ-साथ इसने भयंकर तानाशाही भी लाद दी। इतना ही नहीं इसमें मानव ऊर्जा का अनुपात नगण्य होता गया है और प्रकृति की संचित ऊर्जा (जो जीवाश्म,– जैसे कोयला या पेट्रोलियम में ही नहीं बल्कि अयस्को के कण-कण में और जलधाराओं में व्याप्त है) के अत्यधिक शोषण से पर्यावरण का संकट उपस्थित हो रहा है।

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का संसार भर में पाँव पसारने के ऐसे नतीजे सामने आने लगे हैं जो किसी भी विचारशील व्यक्ति को भयभीत कर इससे विमुख करते हैं। आज विकल्प का अर्थ मनुष्य की पूरी जीवन पद्धति को प्रकृति के अनुकूल बनाने की है। समाज-निर्माण के पीछे की यह सर्वोपरि सच होगी। आज अगर कोई विकल्प ढूँढ़ना है तो वह दुनियां पर हावी अंतहीन आकांक्षाओं को खतम कर प्रकृति की सहयोगी सरल जीवन पद्धति की दिशा में ढूँढ़ना होगा। महात्मा गाँधी का यह कथन ध्यान में रखने लायक है : संसार में हर व्यक्ति की जरूरत के लिए यथेष्ट संपदा है लेकिन एक भी व्यक्ति की लिप्सा को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है। (There is enough in the world for every ones need but not enough for one man's greed.) शायद यह बीसवीं सदी की सबसे महान उक्ति है।

महात्मा गाँधी का अंग्रेजी शासन के खिलाफ चलाया गया असहयोग आन्दोलन का एक प्रतीकात्मक महत्व इस दिशा में हो सकता है। उस समय तो यह असहयोग अंग्रेजों द्वारा थोपे गये विदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के व्यवहार से था। लेकिन यह हमें आज भी एक दिशा दिखाती है जिस पर चलकर हम वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था और जीवन पद्धति से असहयोग कर जीवन को एक नई दिशा में मोड़ सकते हैं। वर्तमान सभ्यता की मूल मान्यता है— जीवन के उन्नयन के लिए जरूरी है : उत्तरोत्तर अधिक उत्पादन और इसके लिए बढ़-चढ़ कर प्रकृति का दोहन। इसमें सफलता का अर्थ इसी दौर में नयी मंजिलें और त्वरण हासिल करना। कहने की जरूरत नहीं कि इस सूत्र में अनिवार्य विनाश के बीज हैं, क्योंकि यह सीमित धरती से असीमित संपदा का आग्रह है।

नयी पहल की शुरुआत कृषि क्षेत्र से ही हो सकती है। क्योंकि यही वह काम है जिसे हम जहाँ कहीं भी खेती लायक भूमि हो शुरू कर सकते हैं और यह जीवन के लिए सर्वोपरि महत्व का भी है। इसमें काफी हद तक स्वायत्तता भी है। जीवन की मूल जरूरतें थोड़े परिवारों के एक छोटे से गाँव में

भी पूरी हो सकती है। आधुनिक औद्योगीकरण के युग में ही कृषि पराश्रित और बाजार का बंधक है। यह न सिर्फ उद्योगों के लिए कच्चे मालों का आपूर्तिकर्ता है बल्कि उर्वरकों और कृषि यंत्रों के लिए उन्हीं पर निर्भर भी है। और कुल मिलाकर इस निर्भरता का नतीजा, जैसा पहले बतलाया गया है, खेती का घाटे का धंधा बन जाना है और सबसे चिंता की बात यह है कि उर्वरकों, कीट नाशकों आदि के अत्यधिक व्यवहार से धरती बाँझ और विषैली बनती जा रही है।

दरअसल यह सब आकस्मिक नहीं बल्कि एक निश्चित नियम के तहत होता है। भौतिक जगत में व्याप्त इंट्रोपी का सिद्धान्त जीव जगत और मानव समाज के व्यवहारों पर भी लागू है। एक अर्थशास्त्री निकोलस जौर्जेस्कु रोजेन ने मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलापों का आकलन इन्हें आवृत्त करने वाले इंट्रोपी के भौतिक सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में किया था जिसे एक दूसरे अर्थशास्त्री हरमन डाली ने पुनः व्याख्यापित किया। उसके अनुसार 'हमारे सकल कार्यकलापों का परिणाम, भौतिक सीमाओं के कारण, अंततः धीरे-धीरे एक दूसरे पाषाण युग की तरफ ले जाने वाला है, जो उपयोगी ऊर्जा के अनिवार्य क्षरण में निहित है। अतः यह मनुष्य की गतिविधियों पर निर्भर करता है कि वह अपनी प्राकृतिक सीमाओं को समझते हुए मानव अस्तित्व को दीर्घकालीन और तुलनात्मक दृष्टि से सुखद और सहनीय बनाता है या प्राकृतिक पूँजी के अति दोहन से आपदापूर्ण और झकझोड़ने वाला बनाता है।'' दूसरा रास्ता तात्कालिक रूप से चमत्कारी लग सकता है, जैसा कि वर्तमान समय में कभी-कभी लगता है। लेकिन यह दीपक का बुझने के पहले अचानक प्रज्ज्वलित होने वाले लौ जैसा है।

पर्यावरण संकट और संसाधनों की सीमाओं को देखते हुए जहाँ-तहाँ छोटे प्रयास हो रहे हैं जो विकास की नयी भूमिका तैयार कर रहे हैं। एक उदाहरण जापान का है। ध्यान में रखने की बात है कि जापान संसार के सबसे विकसित औद्योगिक देशों में है। एक अमरीकी लेखक पॉल रॉबर्ट्स ने जापान के क्युसु नामक एक द्वीप पर बत्तखों के सहारे धान की खेती करने वाले एक किसान ताकाओं फुरोनो की खेती का विवरण दिया है। ताकाओ फुरोनो सात एकड़ के धान के खेत में कीटों को मारकर खाने और अपने अवशिष्ट से धान को आवश्यक पोषक तत्व पहुँचाने वाले बत्तखों का सहारा लेता है। अगली फसल में गेहूँ और सब्जियाँ होती हैं। इन फसलों में किसी भी बाहरी रासायनिक तत्व का प्रयोग नहीं होता। इस पूरी प्रक्रिया के अन्त में साल का आय 1,36,000 डालर होता है। इस प्रयोग का संदर्भ भी चारो ओर फैल रहा प्रदूषण है ऐसा लेखक का निष्कर्ष है।

''फुरोनो और दूसरे मिश्रित खेती को लेकर चले वाले किसानों का जबाब साफ है, मिश्रित और बहुआयामी खेती की दिशा में चलकर ही मनुष्य सिमटते संसाधनों की दुनियाँ में भविष्य की जरूरत के हिसाब से खाद्यान्न बिना अत्यधिक बाहरी खर्च (external cost) का बोझ लादे प्राप्त कर सकता है।'' बाहरी खर्च का तात्पर्य पर्यावरण के उस प्रदूषण से है जो उत्तरोत्तर कृषि को कठिन बनाता जा रहा है। स्वयं भारत में कई लोग पारंपरिक कृषि के आधार पर नये प्रयोग कर रहे है। जिससे बिना रासायनिक उर्वरकों और आधुनिक मशीनों के काफी अच्छी पैदावर हासिल की जा रही है।

जिस तरह के निजी प्रयोगों की बात की गई है वैसे प्रयोग बड़े पैमाने पर राष्ट्रों के स्तर पर भी हो सकते हैं इसका प्रमाण क्यूबा की नयी व्यवस्था में मिलता है। क्यूबा के प्रयोग पर थोड़ा तफसील में जाना जरूरी है। क्योंकि यह राष्ट्रीय स्तर पर उठाये गये कदमों का नतीजा है।

1 जनवरी 1959 में फिदेल कास्त्रो के नेतृत्व में क्यूबा के वामपंथी गुरिल्ला सैनिकों ने क्यूबा के तानाशाह बातिस्ता को अपदस्त कर वहाँ की सत्ता अपने हाथ में लिया। उस समय तक वहाँ की अर्थव्यवस्था पूरी तरह अमेरिका पर आश्रित थी। वहाँ हजारों एकड़ के विशाल कृषि फार्म थे, जिनमें भारी मशीनों से मूलतः गन्ना, तम्बाकू की खेती होती थी। चीनी निर्यात, जो मूलतः अमरिकी बाजार पर निर्भर था, इसकी आय का सबसे बड़ा श्रोत था। इसके अलावा अमेरिका की ही तर्ज पर बड़े-बड़े रैंच (अत्यधिक क्षेत्रफल वाले कृषि फार्म) थे जिन पर पशुपालन होता था।

क्रान्ति के बाद अचानक क्यूबा की आय का मूल स्रोत अमेरिका एवं दूसरे पूँजीवादी देशों में होने वाले निर्यात खतम हो गया। पर यह शीत युद्ध का काल था और अमेरिका विरोधी सोवियत यूनियन क्यूबा के लिए एक सहायक की भूमिका में आ गया। उसने क्यूबा से चीनी खरीदना शुरू किया और एवज में क्यूबा को सस्ते रेट पर पेट्रोलियम देने लगा जिससे कारखाने और कृषि मशीन पूर्ववत चलने लगे। यही नहीं रूस से प्राप्त सस्ते तेल का अन्यत्र निर्यात कर भी क्यूबा नफा कमाने लगा। इस तरह क्यूबा की भारी यंत्रों से चलने वाले बड़े फार्मों की खेती और यातायात व्यवस्था जारी रही। यह सब औद्योगिक खेती के बने बनाये रास्ते पर चल रहा था।

लेकिन 1980 के बाद रूस की सोवियत व्यवस्था ध्वस्त हो गयी और सोवियत यूनियन से क्यूबा को मिलने वाली सुविधाएँ बन्द हो गयीं। लेकिन वहाँ की वामपंथी

सरकार ने हार नहीं मानी और इस आपदा को एक वैकल्पिक अवसर में बदलने का प्रयास किया। उनकी सफलता ने विकास की एक नयी दिशा की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट किया।

कई चरणों में बड़े फार्मों को, जो सरकारी क्षेत्र में ही थे, तोड़ कर छोटे छोटे सहयोगी और निजी कृषि फार्मों में बदल दिया गया। इससे केन्द्रित निर्देशन में चलने वाले विशाल फार्मों की जगह छोटी जोतों का संचालन उस पर काम करने वाले किसानों के हाथ में आ गया। आयातित मँहगे उवरकों और कीटनाशकों तथा अन्य तरह के रसायनों का आयात बन्द हो गया था क्योंकि इसके लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा का अभाव हो गया। इस अभाव से पैदा समस्या का समाधान वहाँ के लोगों ने उर्वरकों की जगह जैविक खाद और जैविक कीट-रोधी औषधों और विधियों को विकसित कर किया। बड़े ट्रैक्टरों और दूसरे कृषि यंत्रों का स्थान बैलों से चलने लगे हलों, बैलगाड़ियों या दूसरे यंत्रों ने ले लिया। छोटे फार्मों और नयी खेती की पद्धति के विकास के साथ नगरों के खाली स्थानों पर मानव उद्यम के बल द्वारा विभिन्न तरह की क्यारियाँ जो मिट्टी भर कर जमीन ऊँची कर बनायी जाती थी (ऑरगेनीपोनिको) में साग सब्जी और फलों की खेती शुरू हुई। फलस्वरूप राजधानी हवाना न सिर्फ फल और सब्जियों के मामले में आत्मनिर्भर बन गया बल्कि इनका निर्यातक भी। ऐसा ही विकास दूसरे नगरों में भी हुआ। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि स्थानीय और वैयक्तिक अनुभव के आधार पर तरह-तरह के प्रयोग कृषि क्षेत्र में हो रहे हैं–और स्थानीय आत्मनिर्भरता हासिल की गयी। डॉ0 गिल नामक एक व्यक्ति के एक ऐसे ही प्रयोग का वर्णन यों है :

''अब उनकी बाड़ी के लहराते खेत में बंद गोभी, चुकन्दर, गोल मिर्च, सेम, प्याज, अमरूद, नींबू तथा कई अन्य फल एवं सब्जियाँ हैं— जो फूल की क्यारियों सी सजी भूमि में उगाई जाती हैं। ये क्यारियाँ पानी की आधी कटी नालियों जैसी लगती हैं। इनके अलावा आम, अंजीर, इमली तथा कई अन्य फल उगाये जाते हैं। डॉ0 गिल कड़ी मिट्टी वाली जमीन में एक मीटर व्यास का अस्सी सेंटीमीटर व्यास का गहरा गढ़ा बनाते हैं ताकि प्रत्येक गढ़े में पौधा लगाया जा सके और इनमें चारे की नम मिट्टी और नम कम्पोस्ट डालते हैं और गुआनो (कीटाणु को भगाने वाला जैविक) और मक्का जो सहायक कीटाणुओं को आकर्षित करते हैं, हानिकारक कीटाणुओं को नियंत्रित करने के लिए डाले जाते हैं। नीम और नौनी के पेड़ अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करते हैं। एक दूसरे बाथ टब में कीटाणुओं के नियंत्रण के लिए मेढ़क पाले जाते हैं।''

डा0 गिल अपने सहायक बच्चों के प्रयासों के बारे में कहते हैं कि यह पर्यावरण का सुरक्षात्मक सामुदायिक विकास है। उनके अनुसार इसमें खाद्य वस्तुओं के उत्पादन के साथ साथ प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण के प्रति दृष्टि में भी बदलाव आता है। ध्यान में रखने की बात है कि यह लेख किसी पुरानपंथी का नहीं है बल्कि एक वामपंथी विचारक का है जो विख्यात मार्क्सवादी पत्रिका ''मंथली रिव्यू'' में प्रकाशित हुआ था। भारत में भी सुभाष पालेकर के कृषि संबंधी कुछ प्रयोग अपनी सफलता में कुछ ऐसी ही दिशा दिखाते हैं।

कुल मिलाकर विकल्प की तलाश हमें जमीन से जुड़ी पारंपरिक व्यवस्थाओं के नये मूल्यांकन और उसके आधार पर धरती से जुड़ी जीवन पद्धति की ओर ही ले जाती है। यह उल्लेखनीय है कि स्वयं मार्क्स के समय में रूसी ''मीर'' (जो किसानों की सामुदायिक व्यवस्था थी) को जीवन्त बनाने की पहल चल रही थी। पर लेनिन समेत रूसी मार्क्सवादियों ने इसे इस आधार पर खारिज कर दिया था कि पूँजीवाद के विकास के साथ ये खतम हो जायेंगे। लेकिन आज जब आधुनिक व्यवस्था स्वयं एक नासूर बन धरती के अस्तित्व पर खतरा बन रही है फिर वैसी पारंपरिक व्यवस्थाओं में विकल्प के अंकुर खोजे जा सकते हैं।

मुझे पता नहीं कि किसी गाँधीवादी ने कभी समग्रता में गाँधी के ग्राम गणराज्य की अवधारणा को विकसित या व्याख्यायित की हो। सोशलिस्ट पार्टी का जनता पार्टी में विलय के बाद समाजवादी आंदोलन को जीवित रखने की दृष्टि से गठित समता संगठन और बाद में समाजवादी जन परिषद ने किशन जी स्वयं जिसके संस्थापकों में थे— औद्योगिक व्यवस्था के विकल्प को सदा अपने उद्देश्यों के केन्द्र में रखा है। अपने समाजवादी उद्देश्यों के साथ किसानों के पारंपरिक कृषि की ओर बढ़ते रुझान से, और महात्मा गाँधी के विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था और राज्य व्यवस्था की कल्पना से सामंजस्य स्थापित कर समाजवाद को एक वैकल्पिक रूप देने की चुनौती आज भी समाजवादी आन्दोलन और समाजवादी जन परिषद् के सामने है। पर्यावरण संकट के मौजूदा संदर्भ में यह महज पसंद या नापसंद की बात नहीं है बल्कि मानव जाति के अस्तित्व की माँग है। दरअसल यह आधुनिक विकास में निहित मृत्युकामना के विरुद्ध दीर्घ जीवन के विकल्प की माँग है।

●

विनोद प्रसाद सिंह स्मृति व्याख्यान

भारतीय अर्थव्यवस्था पर विमुद्रीकरण का प्रभाव

प्रो0 अरुण कुमार

पटना स्थित गांधी संग्रहालय के सभागार में दिनांक 08.02.2017 को विनोदानंद प्रसाद सिंह स्मृति व्याख्यान में 'भारतीय अर्थव्यवस्था पर विमुद्रीकरण का प्रभाव' विषय पर बतौर मुख्यवक्ता बोलते हुए प्रख्यात अर्थशास्त्री एवं जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय/नई दिल्ली के सेवानिवृत प्राध्यापक प्रो.(डॉ) अरुण कुमार ने कहा कि विमुद्रीकरण जल्दबाजी में लिया गया र्निणय है।

हमारी सरकार की एक दलील यह थी आतंकी गतिविधियों के वित्त-पोषण में नकली नोटों का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है।विमुद्रीकरण से नकली नोटों को चलन से बाहर कर इन आतंकी गतिविधियों पर पाबंदी लगाई जा सकती है।यह सच है कि आई एस आई द्वारा बरास्ता नेपाल बड़े पैमाने पर नकली नोट भारत भेजे जाते हैं।भारत में कुल 22.50 लाख करोड़ रुपये मूल्य की मुद्रा है जिसमें से 17.50 लाख करोड़ रूपये की मुद्रा चलन में है और शेष 5 लाख करोड़ रुपये मूल्य की मुद्रा भारतीय रिजर्व बैंक के पास नगद रिजर्व अनुपात के रूप में जमा है। रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार देश में कुल 400 करोड़ रुपये मूल्य के नकली नोट चलन में है जिसकी मात्रा चलन के कुल नोटों की तुलना में नगण्य है।नकली नोटों से मात्र एक बार ही कोई वस्तु या सेवा खरीदी जा सकती है। बार-बार कोई वस्तु या सेवा खरीदने के लिए बार-बार नकली नोटों की छपाई की जाती है और इसमें स्टेट एक्टरों की संलिप्तता होती है।वे 500 रुपये व 2000 रुपये के नए नोटों की शक्ल के नकली नोट छाप सकते हैं। इसलिए सही समाधान इनकी छपाई व अर्थव्यवस्था में इनके प्रवेश रोकना है।विमुद्रीकरण का ऐसे वित्त-पोषण पर शून्य प्रभाव होगा।

सरकार की दूसरी व मुख्य दलील यह थी कि इससे कालाधन अर्थव्यवस्था से बाहर निकलेगा और इसका लाभ गरीबों को मिलेगा। सरकार की मान्यता थी कि लाखों करोड़ रुपये मूल्य के कालेधन बैंकों में वापस नहीं आऐंगे और फलतः रिजर्व बैंक की देनदारियाँ काफी कम हो जाएंगी और देनदारियां में हुई कमी से बचा धन सरकार के खजाने में चला जाएगा जिसे गरीबों के कल्याणार्थ खर्च कर अमीरों को लूट कर गरीबों में बाँटने की रॉबिनहुड छवि बनाने की योजना थी,लेकिन लगभग सारे नोटों का वापस बैंकों में आने से यह योजना असफल हो गई। कालेधन के बारे में सरकार की गलत धारणा के कारण इस योजना को असफल होना ही था।

कालाधन क्या है?कालेधन पर काले रंग और सफेद धन पर सफेद रंग नहीं लगे होते हैं।जो धन घोषित नहीं किया जाता है ,वह कालाधन है। कालाधन कानूनी व गैर-कानूनी दोनों तरीके से कमाया जाता है। जैसे-हम ट्यूसन पढ़ाते हैं,लेकिन हम इससे प्राप्तआय की घोषणा नहीं करते हैं।कोई चिकित्सक निजी प्रैक्टिस करता है, लेकिन इस निजी प्रैक्टिस से प्राप्त धन की घोषणा नहीं करता है।तरीके कानूनी हैं,लेकिन अघोषित धन कालाधन है। नकली दवाओं व नशीले पदार्थों के गैर-कानूनी कारोबार से भी बड़े पैमाने पर कालेधन की कमाई की जाती है।बहुत से व्यवसायी अपने लागत खर्च को बढ़ा-चढ़ा कर और मुनाफा कम दिखाकर कालेधन कमाते हैं।बहुत सारे व्यवसायी और व्यापारी आयकर विभाग द्वारा पकड़े गए धन को बड़ी आसानी से अपनी चालू पूँजी दिखाकर अभियोग से बच जाते हैं।बहुत सारी कंपनियाँ लेयरिंग की मदद से धन के वास्तविक स्रोत को छिपाकर कालेधन को सफेद रूप में प्रदर्शित करती हैं। आम लोगों की यह आम धारणा है कि कालाधन का मतलब नगद धन होता है जबकि बात ऐसी नहीं है। ज्यादातर कालेधन अन्य रूपों में ही होते हैं।हम आमदनी करते हैं और इसका कुछ भाग खर्च करते हैं एवं कुछ भाग बचाते हैं।इस बचत के संचय व निवेश के लिए हम विभिन्न पोर्टफोलियों--नगद,रीयल एस्टेट,शेयर सोना इत्यादि--अपनाते हैं।आज हमारे देश में कुल लगभग 300 लाख करोड़ रुपये मूल्य के कालेधन हैं तथा इसका मात्र एक प्रतिशत भाग ही नगद रूप में है और शेष अन्य रूपों में ही हैं।विमुद्रीकरण से मात्र इस एक प्रतिशत भाग अर्थात 3 लाख करोड़ पर ही चोट हुई है,लेकिन लोगों ने तरह-तरह के जुगाड़ अपना कर इनको भी सफेद कर लिया।लोगों ने बड़े पैमाने पर गरीबों के जन-धन खातों का इस्तेमाल इस उदेश्य के लिए किया।मेरे एक व्यवसायी मित्र के पास 20 करोड़ के पुराने नोट थे जिन्हें उन्होंने अपने मजदूरों को चार माह की अग्रिम वेतन देने पर

खर्च कर आगे तैयार होने वाले माल बेच कर सफेद धन प्राप्त करने की तरकीब निकाल डाली। प्रो.कुमार के अपने आंकड़ों के अनुसार,देश की अर्थव्यवस्था के सालाना कुल जीडीपी 150 लाख करोड़ रूपये का 62 प्रतिशत यानी 93 लाख करोड़ रुपये कालाधन है।लोगों का मानना है कि देश में कालेधन की एक समानांतर अर्थव्यवस्था है जबकि बात ऐसी नहीं है।हमें ज्यामिति में पढ़ाया जाता है कि समानांतर रेखाएँ आपस में कभी नहीं मिलती हैं।कालेधन की अर्थव्यवस्था और सफेद धन की अर्थव्यवस्था आपस में अभिन्न रूप से जुड़ी हैं तथा वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं।जरूरत के हिसाब से धन एक से दूसरे में आता-जाता रहता है।कालेधन की अर्थव्यवस्था सरकार की नीतियों को निष्प्रभावी कर देती है। जैसेःसरकार नीतिगत निर्णय लेकर कुछ तरलता घटाती है,तो उतनी तरलता कालेधन की अर्थव्यवस्था से चली आती है।अगर हमारे अर्थव्यवस्था में कालेधन नहीं होते,तो हमारा विकास दर 5 प्रतिशत अधिक होता तथा हमारी अर्थव्यवस्था और कई ट्रिलीयन की होती एवं हमारी गणना निम्न प्रति व्यक्ति आय वाले देश की जगह मध्यम प्रति व्यक्ति आय वाले देश के रूप में होती।हम घाटे के बजट की जगह लाभ के बजट बनाते।ये कालेधन हमारी अर्थव्यवस्था में पिछले 70 वर्षो में जमा हुए हैं। असली चुनौती इनके सृजन को रोकना है और इसे रातोंरात नहीं रोका जा सकता है।अर्थव्यवस्था में कालेधन व सफेद धन साथ-साथ सृजित हे रहे है,किन्तु उनके अनुपात बदलते रहते हैं।

विमुद्रीकरण का भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।मुद्रा किसी अर्थव्यवस्था लिए रक्त के समान होता है और किसी अर्थव्यवस्था में इसका अबाध परिसंचार ठीक उसी प्रकार जरूरी है जिस प्रकार किसी जीव के शरीर में रक्त का।भारत के अर्थव्यवस्था में चलन में मौजूद कुल मुद्रा का लगभग 86इ हिस्सा 500 और 1000 रुपये मूल्य के नोटों का था। इनको अचानक अर्थव्यवस्था से वापस लेना किसी जीव के शरीर से रक्त निकाल लेना है। कल्पना की जा सकती है कि किसी जीव की क्या स्थिति होगी जब इतनी बड़ी मात्रा में रक्त निकाल लिया जाए और बहुत थोड़ा-थोड़ा रक्त बाहर से चढ़ाया जाए।ठीक यही स्थिति हमारी अर्थव्यवस्था की हुई है।चलन से बाहर किये गए नोट लगभग 15 वर्ष पहले छपे थे ।नोट छपाई के लिए कागज व स्याही की कमी से जूझ रहे देश के लिए पुराने नोटों की कमी को नए नोटों से इतनी जल्दी पूरा करना संभव नहीं है।

ऐसी बात नहीं है कि दुनिया में विमुद्रीकरण की यह पहली घटना है। सोवियत संघ,वेमर गणराज्य जैसे कई अन्य देशों में भी इससे पहले विमुद्रीकरण की नीति अपनाया जा चुकी है। अभी हाल में, लैटिन अमेरिकी देश वेनेजुएला ने भी विमुद्रीकरण की नीति अपनाई है । मुद्रास्फीति के कारण इनके मुद्राओं के मूल्य गिरने से मँहगाई इतनी बढ़ गई थी कि लोग बोरियों में रूबल, मार्क या बोलीवर लेकर बाजार जाते थे और झोलियों में सामान खरीद कर घर लौटते थे। लेकिन,भारत में ऐसी कोई स्थिति नहीं थी।भारत के लिए भी यह पहली घटना नहीं है।इससे पहले भी भारत में कई बार विमुद्रीकरण की गई थी।सन् 1978 में भारत में 1000,5000 और 10000 रुपये मूल्य के नोट चलन से वापस लिये गए थे।तब ये नोट देश के कुल मुद्रा के मात्र 0.6 प्रतिशत ही थे। इससे अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।इतनी बड़ी मात्रा में चलन में मौजूद मुद्राओं को बिना किसी पूर्व तैयारी के चलन से वापस लेने से देश के अर्थव्यवस्था में मंदी आ गई है जिससे हमारे विकास-दर में काफी कमी आई है और मंदी का यह दौर आगामी कई वर्षो तक जारी रहेगा।सरकार की दलील है कि महज कुछ ही महीनों में सब कुछ ठीक हो जाएगा, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं होने जा रही है।2008-09 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी से उबरने में दुनिया के देशों को कई वर्ष लग गए थे। मंदी के दौर में उद्योगों व व्यवसायों की अपेक्षाएँ बदल जाती हैं। इन अपेक्षा के कारकों को आपस में सामंजस्य स्थापित करने में कई वर्ष लगते हैं।सामंजस्य स्थापित होने तक आर्थिक मंदी का यह दौर जारी रहता है।

विमुद्रीकरण से देश में बेरोजगारी बढ़ी है।शहरों के कल-कारखाने बंद हो रहे हैं।मजदूरों का शहरों से गाँव की ओर पलायन हुआ है और अभी भी यह जारी है।मनरेगा में रोजगार खोजने वाले लोगों की संख्या में अचानक काफी उछाल आया है।विमुद्रीकरण की इस नीति से ऐसे तो पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुयी है, लेकिन इसका सबसे ज्यादा प्रभाव असंगठित क्षेत्र पर पड़ा है।संगठित क्षेत्र जिनकी निर्भरता नगद पर कम है थोड़ा प्रभावित हुये चल रहा है।लेकिन,असंगठित क्षेत्र तो लगभग बर्बाद हो चुका है।छोटे दुकानदारों की दुकानें बंद होने की स्थिति में हैं, उनकी बिक्री में काफी गिरावट आयी है।किसानों की स्थिति चिन्ताजनक है।उनके पास फसल बुआई के लिए पैसा नहीं है।फसलों की बुआई में देरी से उनके पैदावार में काफी कमी आती है।इस प्रकार देश खाद्यान्न संकट की ओर बढ़ रहा है।सरकार जिन आंकड़ों के आधार पर सब कुछ तुरंत ठीक हो जाने की बात करती है वे सिर्फ संगठित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते है। सरकार के पास असंगठित क्षेत्र का कोई

आँकड़ा नहीं है।

सरकार की विमुद्रीकरण नीति से बैंकों की सेहत पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। बैंकों में अधिक मात्रा लोगों का पैसा जमा हो गया है जिस पर बैंकों को काफी ब्याज भुगतान करना पड़ रहा है। नए नोटों के कारण एटीएम मशीनों में तकनीकि बदलाव लाने पर काफी बड़ी राशि खर्च की गई है।लेकिन,मंदी के कारण उद्यमियों द्वारा साख की माँग में काफी कमी आने से बैंकों की आय में काफी कमी आई है।आज बैंकों की स्थिति यह है कि उनकी आय से ज्यादा उनके खर्चे हैं।

विमुद्रीकरण से देश के भुगतान-संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।भारत की मुद्रा में लोगों के विश्वास में काफी कमी आयी है।अक्सर विदेश प्रवास करने वाले लोग भारतीय रूपया के बदले विदेशी मुद्राओं का संचय कर रहे हैं।

सरकार को उम्मीद थी विमुद्रीकरण से उसे लाखों करोड़ मूल्य के धन प्राप्त होंगे,लेकिन कुछ प्राप्ति की बजाए उल्टे विमुद्रीकरण के क्रियान्वयन में लाखों करोड़ रुपये खर्च हो गए।इसका प्रभाव इस वर्ष के केंद्रीय बजट पर भी दिखाई पड़ रहा है।

सरकार अब कैशलेस की बात कर रही है। टीवी पर एक कार्यक्रम के दौरान मेरे साथ केन्द्रीय मंत्री रविशंकर प्रसाद और भाजपा प्रवक्ता संबित पात्रा मौजूद थे। वे लगातार कैशलेस-कैशलेस बोल रहे थे। मैने जब उनसे कहा कि हम अभी स्वीडन नहीं हो सकते हैं।हमारे यहाँ 94 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र है। साक्षरता बहुत कम है और तकनीकी ज्ञान वाले लोगों की संख्या तो काफी कम है। इसलिए कैशलेस की जगह लेसकैश कवी बात करना ठीक रहेगा। कैशलेस की भी अपनी सीमाएँ हैं। इसमें भी असुरक्षा का खतरा है।अभी हाल में ही बहुत सारे लोगों के बैंक खाते हैक कर लिए गए थे।वर्तमान संदर्भ में कालेधन की समस्या का यह कोई सफल व व्यवहारिक हल नहीं है।

एक आँकड़े के अनुसार, देश में कुल 3 प्रतिशत लोगों के पास ही कालाधन है, लेकिन, 97 प्रतिशत लोग अकारण ही पिसे गए हैं। इस 3 प्रतिशत लोगों में राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों व बड़े व्यवसायी-व्यापारियों की तिकड़ी है जिसे तोड़े बिना कोई हल निकलना मुश्किल है।इस तिकड़ी के पास ही अकूत कालाधन है। कैग ने अपनी रिपोर्ट में इनको आदतन कर-अपराधी कहा है।देश में इनके द्वारा किए जा रहे घोटालों की संख्या और राशि में काफी वृद्धि हुई है।अकेले मधु कोड़ा द्वारा किए गए 600 करोड़ रूपये का घोटाला देश के तमाम छोटे कर्मचारियों द्वारा उस अवधि किए गए घूसखोरी से बड़ा है।1997 से पहले भारत में इस तिकड़ी द्वारा कालेधन को सफेद करने के लिए 6 बार स्वैच्छिक खुलासा योजना (वीडीएस)लाई गई है।इस तरह की योजना कर अदा रहे इमानदार करदाताओं को निरूत्साहित करने वाली थी कि बेईमान इस तरह की योजना का लाभ लेकर अपनी काली कमाई सफेद करने में सफल हो रहे है। 1997 में सुप्रिम कोर्ट की फटकार के बाद केंद्र सरकार ने कोर्ट में हलफनामा दायर कहा था कि इस प्रकार की कोई योजना अब नहीं लाई जाएगी।फिर भी 2016 का आईडीएस भी कुछ उसी तरह की योजना है।कालेधन की समस्या का कोई समाधान विमुद्रीकरण नहीं है।सतत् जनांदोलनों द्वारा कालेधन के खिलाफ जन-चेतना विकसित कर इसका समाधान किया जा सकता है।

अपने व्याख्यान का समापन बाली रामायण के एक आख्यान से करते हुए कहते हैं कि हमारे रामायण में रावण राम के वाण के प्रहार से तुरंत मर जाता है, लेकिन बाली रामायण में वह बार-बार उठ कर संघर्ष करता है। बाली रामायण के रावण की तरह ही कालेधन की समस्या है जिसके खिलाफ निरंतर सजगता की जरूरत है।

अर्थशास्त्री डीएम दिवाकर ने कहा कि देश अभूतपूर्व आर्थिक संकट से गुजर रहा है और विमुद्रीकरण के गलत निर्णय से यह संकट देश पर जान-बूझ कर थोपा गया है ।थोक-मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता-मूल्य सूचकांक बताते हैं कि देश मंदी के दौर से गुजर रहा है।देश का तो इससे फायदा नहीं हुआ। आखिर किसके फायदा के लिए यह इतना बड़ा खेल? कहीं एटीएम मशीन निर्माण कंपनियों के फायदे के लिए तो नहीं? कार्यक्रम को संबोधित करते हुए समाजवादी शिवानंद तिवारी ने कहा कि विमुद्रीकरण की नीति से सबसे ज्यादा क्षति गरीबों एवं वंचितों की हुई है।उनके रोजगार छीन चुके हैं।वे भूखमरी से जूझने को अभिशप्त हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता समादवादी चिंतक पन्नालाल सुराणा ने की तथा संचालन चर्चित एवं प्रखर युवा समाजवादी नवेन्दु प्रियदर्शी ने किया।

इस अवसर पर अर्थशास्त्री डॉ. नवल किशोर चौधरी, रोशनलाल अग्रवाल, गांधी संग्रहालय के निदेशक डॉ.रजी अहमद, पूर्व पुलिस अधिकारी रामचन्द्र खान,पत्रकार श्रीकांत, सामाजिक कार्यकर्ता महेन्द्र यादव, इन्दिरा रमण उपाध्याय, शाहिद कमाल, प्रो. सुशील कुमार, प्रो.प्रमोद कुमार, प्रो.अवधेश कुमार, लेखक पुष्पराज,अनिल कुमार राय, संस्कृतिकर्मी अनीश अंकुर, हरेराम, अलका सिंह सहित सैकड़ों लोग उपस्थित थे। ●

नियमराजा के नियम से खिलवाड़ करने वाले

नियमगिरि में बाक्साइट खनन हो अथवा नहीं इस पर सर्वोच्च न्यायलय के निर्देश पर जनमत संग्रह हुआ था। शत-प्रतिशत मत वेदांत कंपनी द्वारा खनन के विरुद्ध पड़े थे। माओवादियों ने जनमत संग्रह के बहिष्कार की अपील की थी। इस प्रकार नियमगिरि में बसे आदिवासियों ने वेदान्त कम्पनी तथा माओवादियों— दोनों को ही अस्वीकार किया था। हताश और पराजित अनिल अग्रवाल के हित में ओडीसा सरकार ने शांतिपूर्ण आंदोलनकारियों को फर्जी मुकदमें लाद कर माओवादी घोषित करने की कायराना कोशिश शुरू की है। सजप के महामंत्री द्वारा नीचे लिखा पत्र श्री नवीन पटनायक तथा केन्द्रीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह को भेजा गया है।

नियमगिरी सुरक्षा समिति द्वारा वर्षों से इंग्लैण्ड के स्टॉक एक्स्चेंज में पंजीकृत वेदान्त कम्पनी द्वारा नियमगिरी पर्वत से बॉक्साइट खनन के विरुद्ध गैर-हथियारबन्द, संविधान सम्मत आन्दोलन तथा न्यायपालिका के हस्तक्षेप के लिए सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जाने से आपकी सरकार को भली-भांति परिचित होना चाहिए। सरकार को यह भी पता होगा कि समिति की स्थापना के समय से श्री किशन पटनायक और भारत के निर्वाचन आयोग में पंजीकृत राजनैतिक दल - समाजवादी जन परिषद भी जुड़ा रहा है जिसके श्री किशन पटनायक संस्थापकों में प्रमुख थे। अस्सी के दशक में गंधमार्दन पर्वत में बॉक्साइट खनन के विरुद्ध भी किशन पटनायक, सर्वोदय नेता अलेख पात्र और मदनमोहन साहू जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने ऐसा ही आन्दोलन चलाया था। तत्कालीन मुख्य मंत्री व आपके पिता स्व. श्री बीजू पटनायक ने राज्य का हित समझा था तथा उस प्रोजेक्ट को मुल्तबी रखने का न्यायोचित निर्णय लिया था।

बहरहाल, नियमगिरी में अनिल अग्रवाल की इंग्लैण्ड की कम्पनी वेदान्त द्वारा खनन कराने अथवा न कराने के सन्दर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश से तथा न्यायपालिका की देखरेख में जनमत-संग्रह हुआ था जिसमें एक भी वोट वेदान्त द्वारा बॉक्साइट खनन के पक्ष में नहीं पड़ा था।आपकी सरकार से जुड़े माइनिंग कॉर्पोरेशन के अदालत में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को बदलवाने के प्रयास को भी न्यायपालिका ने अस्वीकार कर दिया है। आपके गृह विभाग को यह भली भांति पता है कि प्रतिबन्धित भाकपा (माओवादी) ने जनमत संग्रह के बहिष्कार की अपील की थी।जनता ने जैसे वेदान्त द्वारा खनन को पूरी तरह से नकार दिया था उसी प्रकार माओवादियों द्वारा जनमत-संग्रह बहिष्कार की अपील को भी पूरी तरह नकार दिया था।

इस परिस्थिति में ओडीशा पुलिस द्वारा नियमगिरी सुरक्षा समिति से जुडे कार्यकर्ताओं पर फर्जी मामले लादने और उन्हें 'आत्मसमर्पणकारी माओवादी' बताने की कार्रवाई नाटकीय, घृणित और जनमत की अनदेखी करते हुए वेदान्त कम्पनी के निहित स्वार्थ में है।

पुलिस द्वारा कुनी सिकाका की गिरफ्तारी ,उसके ससुर तथा नियमगिरी सुरक्षा समिति के नेता श्री दधि पुसिका,दधि के पुत्र श्री जागिली तथा उसके कुछ पड़ोसियों को मीडिया के समक्ष 'आत्मसमर्पणकारी माओवादी' बताना ड्रामेबाजी है तथा इसे रोकने के लिए तत्काल आपके हस्तक्षेप की मैं मांग कर रहा हूं। कुनी, उसके ससुर और पड़ोसियों पर से तत्काल सभी मुकदमें हटा लीजिए जो आपकी पुलिस ने फर्जी तरीके व बेशर्मी से लगाये हैं।

इस पत्र के साथ मैं कुनी सिकाका के दो चित्र संलग्न (यहाँ नहीं) किये गए हैं। एक चित्र सितम्बर 2014 में हमारे दल द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में सर्वोदय नेता स्व. नारायण देसाई द्वारा कुनी को शॉल ओढ़ाकर सम्मानित किया जा रहा है।दूसरे चित्र में कुनी इस संगोष्ठी को माइक पर संबोधित कर रही है, हमारे दल समाजवादी जन परिषद का बिल्ला लगाये हुए है।

तीसरा चित्र गत वर्ष 5 जून पृथवी दिवस के अवसर पर नियमगिरी सुरक्षा समिति द्वारा आयोजित खुले अधिवेशन का है।इस कार्यक्रम के मंच पर सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ पर्यावरण-अधिवक्ता के सामने कुनी बैठी है,मंच पर सुश्री मेधा पाटकर व प्रफुल्ल सामंतराय भी बैठे हैं। मैं भी इस कार्यक्रम में नियमगिरी सुरक्षा समिति द्वारा आमंत्रित था तथा वह चित्र मैंने खींचा है।कार्यक्रम में पूरा पुलिस बन्दोबस्त था तथा आपके खूफिया विभाग के कर्मी भी मौजूद थे।

संसदीय लोकतंत्र,न्यायपालिका और संविधान सम्मत अहिंसक प्रतिकार करने वाली नियमगिरी सुरक्षा समिति को माओवादी करार देने की कुचेष्टा से आपकी सरकार को बचना चाहिए। राज्य की जनता,सर्वोच्च न्यायपालिका और पर्यावरण के हित का सम्मान कीजिए तथा एक अहिंसक आन्दोलन को माओवादी करार देने की आपकी पुलिस की कार्रवाई पर रोक लगाइए।

चूंकि हमारी साथी कुनी सिकाका को गैर कानूनी तरीके से घर से ले जाने में अर्ध सैनिक बल भी शामिल था इसलिए इस पत्र की प्रतिलिपि केन्द्रीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह को भी भेजी जा रही है। इस पत्र को सार्वजनिक भी किया गया है।

बजट 2017 : नवउदारवादी विचारधारा का प्रतिबिंब

बलबीर जैन

भारत की अर्थव्यवस्था पर अभिजात वर्ग के नियंत्रण का दायरा आर्थिक संमृद्धि के साथ बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। दरअसल आर्थिक और सामाजिक ध्रुव्रीकरण की पराकाष्ठा की ओर बढ़ने की प्रक्रिया बिना अवरोध के जारी है। मुख्यधारा के सभी दलों के लिए नवउदारवाद एक साझा बिंदु रहा है और 2017 का बजट उसी विचारधारा का प्रतिबिंब है।

पर इस बजट में कुछ बातें नई भी हैं। अभी तक सरकारी व्यय को दो भागों में बांटा जाता रहा है- योजनागत और गैरयोजनागत व्यय। यह फर्क इस बजट में हटा दिया गया है। इससे आकलन सरल हो जाता है। पारदर्शिता की नजर में यह कदम उचित है।

बजट को लुभावने रूप में व्यक्त करने की प्रक्रिया की परिपाटी 1970 के दशक से रही है। लगभग हर बजट में पुरानी और घिसी-पिटी योजना को नया नाम देकर प्रचारित किया जाता रहा है। इस तरह की लगभग 100 मदों का केंद्रीय बजट में समावेश हो चुका है। इस बजट में इसे 15 मदों तक ही सीमित रखने की बात कही गई है। गौरतलब है कि एक ही तरह के काम के लिए हर बजट में कुछ नई योजनाएं प्रचारित करने से यह जटिल व्यवस्था बन गई थी जिसे व्यवस्थित करना निसंदेह एक उचित कदम है। मिसल के लिए रोजगार उपलब्ध कराने के मनरेगा के साथ सात अन्य कार्यक्रम भी हैं। मनरेगा पर प्रतिवर्ष 48,000 करोड़ रुपये खर्च किये जाते हैं, जबकि इस तरह के अन्य कार्यक्रमों पर भी केन्द्र सरकार प्रतिवर्ष 12,000 करोड़ रुपये खर्च कर रही हैं। इन सब कार्यक्रमों का समुचित आकलन करना आसान काम नहीं है। सही आकलन के अभाव में सरकारी फिजूलखर्ची नियंत्रित करना बहुत मुश्किल है। इसलिए ऐसा कदम उठाया ही जाना चाहिए था।

लोक-लुभावन जुमलों का इस्तेमाल करने में भाजपा कांग्रेस से पीछे नहीं है। किसानों की 'आय सुरक्षा' केवल जुमला है। बजट के अनुसार इसका मतलब पांच वर्षों में कृषि उत्पादन की संमृद्धि द्वारा किसानों की आय को दोगुणा करना है। किसानों की आमदनी कृषि उत्पादन पर ही निर्भर नहीं है- कृषि दामों की इसमें अहम भूमिका रहती है। मिसाल के लिए किसी खाद्य पदार्थ (अथवा कृषि पदार्थ) के उत्पादन में 50 फीसदी इजाफा हो जाता है, पर इसका दाम आधा रह जाता है। पहले उत्पादन 100 टन था और अब 150 टन है। कीमत पहले 1000 रुपये प्रति टन था और अब 500 रुपये रह जाती है। पिछले वर्ष आमदनी 10071000 c 100,000 रुपये थी जो कि अब घटकर 1507500c 75,000 रुपये रह जाती है। इस तरह किसी की कुल आमदनी में 25 फीसदी गिरावट आ गई है जबकि उसकी शुद्ध (निवल) आमदनी में गिरावट तो 25 फीसदी से भी ज्यादा आती है क्योंकि बीजों खाद आदि के खर्चे तो पूर्ववत ही रहते हैं।

नोटबंदी के संदर्भ में मीडिया में पिछले दो महीनों के दौरान इस तरह के हालात से उत्पन्न दयनीय स्थिति की काफी चर्चा रही है। नोटबंदी के पहले भी किसानों की हालत इसी तरह कई बार दयनीय हो जाती है, पर इसकी खास चर्चा नहीं होती है। न ही यह विपक्ष के लिए कोई अहम मुद्दा है। मुख्यधारा के सभी दलों के लिए साम्प्रदायिकता और जाति से जुड़े मुद्दे ही मुख्य हैं, क्योंकि इसी आधार पर समाज को बांट कर ही सत्ता हासिल की जाती है। हमारी नजर में न्यायसंगत स्तर पर कृषि दामों का प्रभावी निर्धारण एक अहम मुद्दा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में हर साल विभिन्न सरकारी कार्यक्रम पर लगभग तीन लाख करोड़ रुपये (अर्थात राष्ट्रीय आधार का लगभग तीन फीसदी हिस्सा) के बराबर खर्च किया जाता है। हमारी नजर में यह खर्च नाकाफी तो है ही, साथ ही फिजूल खर्च भ्रष्टाचार और सरकारी निकम्मेपन के कारण इसका असर अपेक्षा से काफी कम रहता है। पर इसके बाबजूद हर बजट में खोखले दावे दोहराए जाते हैं। इस बजट में पचास हजार ग्राम पंचायतों को 2019 तक गरीबी से पूरी तरह निजात दिलाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह कैसे होगा? मनरेगा का असर कितना है? इसको जांचे बिना क्या इस तरह का लक्ष्य निर्धारित करना वाजिब है?

मनरेगा के नाम पर खर्च तो किया जाता है पर इसकी क्या उपलब्धि है? मनरेगा कार्यक्रम 2005 से चल रहा है, पर आज तक इसकी उपलब्धि क्या रही है, इसका जिक्र शायद ही होता है। हां लक्ष्य तो हर साल निर्धारित किये जाते हैं। इस बजट में कहा गया है कि पिछले बजट में निर्धारित लक्ष्य के अनुसार जो 5 लाख तालाब और 10 लाख वानस्पतिक खाद गड्ढे बनाने थे, इस लक्ष्य को पूरी तरह हासिल कर लिया जाएगा। बजट पेश किये जाने तक तीन तिमाही समय बीत चुका है- इस दौरान क्या उपलब्धि रही है? इसका जिक्र तो होना चाहिए। खर्चा तो दिख रहा है पर असर तो कहीं भी नहीं है।

फिजूलखर्ची, भ्रष्टाचार और निकम्मेपन के कारण मनरेगा के खर्च के बराबर असर की अपेक्षा करना बेमतलब है। मनरेगा पर खर्च को विकेंद्रीकरण के कारण व्यवस्थित करना बहुत मुश्किल है- सरकारी तंत्र के अन्य हिस्सों की तरह पंचायतें भी भ्रष्टाचार से ग्रस्त हैं। एक तरफ अशिक्षा है और दूसरी ओर धर्म और जाति से जुड़े समीकरण हैं, जिनके कारण लोकतंत्र प्रभावी रूप में पनप नहीं पाया है। मार्क्सवादी नियंत्रित सरकारी तंत्र में भी फिजूलखर्च, भ्रष्टाचार और निकम्मापन कम नहीं रहा है। तो फिर बेरोजगारी और उससे जुड़ी गरीबी की समस्या का क्या हल है? शायद हम इस मामले में स्वीडन आदि उत्तरी यूरोपीय देशों के अनुभव से सबक ले सकते हैं।

स्वीडन में शिशुओं की देखभाल करने के लिए सरकारी क्षेत्र में एक विस्तृत व्यवस्था की गई है। हर चार शिशुओं पर एक परिचारिका नियुक्त की जाती है। इस तरह एक तरफ तो रोजगार की व्यवस्था हो जाती है, दूसरी और स्त्री सशक्तीकरण की दिशा में स्वीडन 1930 के दशक से ही अग्रसर रहा है। भारत में 14 लाख आंगनबाड़ी केंद्र हैं, जिनकी स्थापना तो की गई हैं पर इनमें बहुत से कार्यरत नहीं है। उनपर महीनों ताला लगा होता है। जो थोड़े-बहुत सक्रिय हैं, वहां सुविधाओं का हमेशा अभाव रहता है। कारण सरकारी खर्च का समुचित आबंटन नहीं होना है। आंगनवाड़ियों की स्थापना तो बहुप्रचारित की गई है पर वे व्यापक स्तर पर उपेक्षित रही है। मिसाल के लिए महिला कौशल के नाम पर इस बजट में 14 लाख आंगनवाड़ी केंद्रों के लिए 5000 करोड़ आबंटित किये गये हैं। प्रति केंद्र औसत आबंटन मात्र 3591 रुपये हैं जो कि एक मजाक ही है।

सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य भी एक मजाक से ज्यादा नहीं है। मौजूदा स्थिति यह है कि मात्र 40 प्रतिशत बच्चे ही दसवीं कक्षा तक पहुंच पाते हैं और बारहवीं कक्षा में तो 30 फीसदी से भी कम बच्चे पहुंच पाते हैं। दूसरे शब्दों में 70 फीसदी से भी ज्यादा बच्चे न्यूनतम शिक्षा स्तर तक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। मौजूदा स्थिति नवउदारवादी नीतियों का परिणाम हैं। वाशिंगटन सहमति के अनुरूप बजटीय घाटे को नियंत्रित करने के लिए शिक्षा पर सरकारी खर्च कम करने की कवायद का असर शिक्षा क्षेत्र पर सबसे ज्यादा रहा है। इससे माध्यमिक शिक्षा का प्रसार तो पूरी तरह अवरूद्ध हो गया है। पिछले पच्चीस वर्षों में सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक ही समाधान- पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप- का बखान किया जा रहा है। पर इसकी क्या उपलब्धि रही है? इसका जिक्र नहीं किया जाता। क्योंकि यह मॉडल पूरी तरह नाकाम हो चुका है। एक घिसे-पिटे और नाकाम कवायद से कुछ भी हासिल नहीं हुआ है और ना ही कुछ हासिल होगा।

गौरतलब है कि शिक्षा के क्षेत्र में पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल का प्रतिपादन सरकारी स्कूलों के तथाकथित नकारात्मक मूल्यांकन से जुड़ा है। नवउदारवादियों ने 1980 और 1990 के दशकों में भारत के सरकारी स्कूलों की बदहाली का प्रचार एक योजनाबद्ध तरीके से किया है। प्रायोजित शोध के माध्यम से सरकारी स्कूलों की तथाकथित त्रुटियों को उनकी बदहाली का जिम्मेदार बताते हुए पब्लिक-प्राईवेट पार्टनरशिप मॉडल का प्रचार किया गया है। नवउदारवादियों का प्रचारतंत्र इतना मजबूत है कि लंदन से प्रकाशित अति प्रतिष्ठित 'इकोनामिस्ट' में भी इस समस्या की नवउदारवाद के अनुरूप चर्चा की गई थी।

हम कॉमन स्कूल की अवधारणा को एक न्यायसंगत व्यवस्था के लिए अनिवार्य मानते हुए शिक्षा के क्षेत्र में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल को सिरे से खारिज करते हैं। सरकारी स्कूलों की मौजूदा बदहाली किन्हीं अन्तर्निहित कारणों से नहीं है। सरकारी खर्चों में किफायत का सीधा असर सरकारी स्कूलों के हालात पर पड़ा है। इन स्कूलों में मूलभूत सुविधाओं के नितांत अभाव के साथ अध्यापकों की भी अत्याधिक कमी की स्थिति उत्पन्न हो गई है। स्कूलों में एक कक्षा में छात्रों की संख्या का मानक 30-40 छात्र प्रति कक्षा है। जबकि सरकारी स्कूलों में 100 से ज्यादा छात्र होना आम बात है। कई क्लास रूमों में तो इतने छात्र समा ही नहीं पाते हैं। क्या

इन हालात में ढंग से पढ़ाई हो सकती है?

सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की आदतन गैरहाजिरी का मुद्दा नवउदारवादी प्रचारतंत्र का एक अहम हिस्सा है। पर ऐसा किन्हीं अन्तर्निहित कारणों से नहीं है। सरकारी प्रशासन की ढिलाई और लचरपन ही सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की आदतन गैरहाजिरी की समस्या का प्रमुख कारण है। सेंट्रल स्कूल भी सरकारी क्षेत्र में हैं पर वहां इस प्रकार की समस्या नहीं है। 1950 और 1961 के दशकों में तो अन्य सरकारी स्कूलों में भी यह समस्या नहीं थी। सरकारी तंत्र की उपेक्षा से यह समस्या पैदा हुई है।

परिस्थितिवश मध्यम वर्ग के कई अभिभावक अपने बच्चों के लिए वैकल्पिक शिक्षा की व्यवस्था करने को बाध्य हैं और इस तरह वे अपने बच्चों का प्राइवेट स्कूलों में दाखिल कराते हैं। पर इसका मतलब उदारवादियों ने कुछ और ही लगाया है। प्राइवेट स्कूलों की शिक्षा की क्वालटी सरकारी स्कूलों के मुकाबले बेहतर है- इस खोखली नींव पर पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल प्रतिष्ठापित किया गया है। सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इसी मॉडल को भाजपा-कांग्रेस सहित मुख्यधारा की सभी पार्टियों ने अपनाया है। पर भारत की अधिसंख्य आबादी इन प्राइवेट स्कूलों की फीस अदा करने में असमर्थ हैं और इस तरह उनके लिए माध्यमिक शिक्षा का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।

निजीकरण के कारण भारत के अधिसंख्य लोग बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित हैं। बजट ने इस मामले में भी निराश किया है। अभी हाल के वर्षों में नेशनल रूरल हेल्थ मिशन के नाम से एक नई स्कीम शुरू की गई है। गौरतलब है कि आजादी के फौरन बाद सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं के एक व्यापक नेटवर्क की व्यवस्था हेतु भूरेलाल कमेटी की सिफारिशो को सरकार ने स्वीकृति दी थी। इस कमेटी की सिफारश के अनुसार, जिस तरह का प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा केंद्रों का व्यापक नेटवर्क बनना चाहिए था- साठ साल बाद भी हम उस लक्ष्य से बहुत दूर है। दरअसल आबादी के हिसाब से देखें तो इन सेवा केंद्रों की स्थिति 1950-60 के दशकों के मुकाबले बदतर हुई हैं। यही नहीं जो केंद्र खोले गये हैं, उनमें से बहुत से केंद्रों में तो डॉक्टर ही नहीं है और साथ ही मूलभूत सुविधाओं का भी नितांत अभाव है। इस बारे में इस बजट में भी इसकी चर्चा तक नहीं है।

कम लागत वाले (अफोर्डएबल) आवासीय स्कीम को बहुत प्रचारित करके सरकार अपनी पीठ थपथपा रही है। इसके लिए इमदाद युक्त ऋणों का प्रावधान किया गया है। हम इस स्कीम की उपयोगिता को नकार नहीं सकते हैं पर इसके कुछ पहलू ध्यान देने योग्य है। इसमदाद के बाद भी इन आवासीय ऋणों पर ब्याज दर लगभग 18 फीसदी है जो कि बैंकों से मिले आवासीय ऋणों की ब्याज दर से दो गुणा हैं। गौरतलब है कि बैंक कम अथवा अनियमित आमदनी के कारण इस श्रेणी के परिवारों को आवासीय ऋण मुहैया नहीं कराते हैं।

आवासीय ऋणों के बाहुल्य से ऋण वापसी की दर कम होने की आशंका को खारिज नहीं किया जा सकता। दरअसल इन आवासीय ऋणों के माध्यम से रीयल स्टेट की मौजूदा मंदी का समाधान करने की कोशिश भी सरकार द्वारा की जा रही है। गृह, वाणिज्यिक भवन, सड़क आदि का निर्माण क्षेत्र रोजगार की दृष्टि से बहुत अहम है। पर क्या ऋण के माध्यम से गृह निर्माण की मांग का सृजन करके मंदी का सामना किया जा सकता है? क्या मांग-सृजन के बेहतर विकल्प उपलब्ध नहीं है? क्या इससे जुड़े जोखिमों को नजरअंदाज किया जा सकता है? गौरतलब है कि अमेरिका में 2008 की महामंदी की शुरुआत आवासीय ऋण वापसी संकट से ही हुई थी।

बिना इमदाद या इमदाद-युक्त ऋणों के द्वारा रोजगार सृजन की अवधारणा वास्तविकता से काफी परे हैं। माइक्रो फाइनेंस के पैरोकार लगातार तीन दशक तक इस तरह के दावे करते रहे हैं। पर ये दावे खोखले ही थे, क्योंकि तमाम कोशिशों के बाद वे प्रामाणिक साक्ष्य नहीं जुटा सके थे। तीन दशक तो वे खोखले दावे दोहराते रहे, पर वास्तविक अनुभव पर आधारित वस्तुस्थिति के सामने अंततोगत्वा इस हकीकत को मानना पड़ा कि माइक्रो फाइनेंस से रोजगार सृजन नहीं होता है। इस सबके बावजूद सरकारी तंत्र इस तरह के खोखले दावों को प्रचारित कर ही रहे हैं। इस वर्ष के इकोनोमिक सर्वे में यह दावा किया गया है कि 5.4 करोड़ माइक्रोलोन से 5.4 करोड़ रोजगार के अवसरों का सृजन किया गया है। यह बात दीगर है कि इस दावे के पक्ष में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है। काम-धंधों के लिए ऋण प्रदान करना कोई नई बात नहीं है। 1976 और 1999 के दौरान समग्र ग्रामीण विकास परियोजना (इंटेग्रेटेड़ रूरल डेवलपमेंट प्रोग्राम) के अंतर्गत 5 करोड़ से भी ज्यादा परिवारों को काम-धंधे शुरू करने के लिए बैंकों ने कम ब्याज पर ऋण दिये थे। पर इस परियोजना से अपेक्षित

परिणाम नहीं हो सके थे। अंततोगत्वा इस महत्वाकांक्षी परियोजना को बंद करना पड़ा था। गौरतलब है कि इस परियोजना में एक तरफ ब्याज की दर कम थी, दूसरी और यह एक भली-भांति नियोजित और भली-भांति संचालित परियोजना थी। जबकि माइक्रोलोन की ब्याज दर लगभग 26 फीसदी है और यह भली-भांति नियोजित भी नहीं है।

इस प्रकार की घिसी-पिटी परियोजनाओं से क्या हासिल हो सकता है? ज्यादातर कर्जदार एक नई मुसीबत-ऋणग्रस्तता- में जरूर फंस सकते हैं। आसानी से हासिल कर्ज की रकम बहुत से गरीब परिवार अनावश्यक उपभोग वस्तुओं पर खर्च कर सकते हैं। इस संभावना को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इसके ठोस साख्यिकीय प्रमाण उपलब्ध है कि बहुत मर्तबा गरीब परिवार ऐसा ही करते हैं। कम और अनियमित आमदनी होने के कारण उनके लिए ऋण वापसी एक मुसीबत बन जाती हैं।

विगत पचीस वर्षों से अर्थनीति की दिशा मोटे तौर पर समरूप रही है। इसका ढांचा वाशिंगटन सहमति पर आधारित है, जिसका केंद्र बिंदु बजटीय घाटे पर नियंत्रण करके आर्थिक स्थिरता स्थापित करना है। आर्थिक बराबरी तो वाशिंगटन सहमति के एंजेडे में ही नहीं है। इसके लिए उन्होंने दो खास जुमलों को इजाद किया है- ''संमृद्धि गरीबों के हित में हैं' और 'समावेशित संमृद्धि'। ये दोनों जुमलों का सांख्यिकीय आधार क्या है? इसका खुलासा किये बिना ही आर्थिक बराबरी को एंजेडे से बाहर कर दिया गया है।

सभी विकसित देशों में गरीबी का उन्मूलन कल्याणकारी नीतियों पर आधारित रहा है। अमेरिका एक अपवाद है और अन्य विकसित देशों की तुलना में यहां गरीबी का स्तर काफी ज्यादा है। उन सब देशों का विशेषकर उत्तरी यूरोपीय देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया कल्याणकारी राज्य से जुड़ी रही है। वहां एक तरफ गैरबराबरी में तेजी से गिरावट के साथ आर्थिक संमृद्धि की दर भी ऊंची थी, ऐसा उनका 1973 तक का अनुभव था। 1973 में पेट्रोल कीमतों में उछाल के साथ आर्थिक परिस्थितियों में तेजी से बदलाव हुआ और साथ ही आर्थिक मंदी के कारण कल्याणकारी व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। बाद में जनसांख्यिकीय ढांचे में बदलाव के कारण भी कल्याणकारी व्यवस्था का बोझ अत्यधिक हो गया था। इससे कल्याणकारी व्यवस्था पर काफी सवाल उठे थे और इसके परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में नवउदारवाद का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी माहौल में भारत में 1991 के आर्थिक संकट के निवारण के बदले अंतरराष्ट्रीय विकास समुदाय ने आर्थिक सुधारों के नाम पर वाशिंगटन सहमति का एजेंडा ही थोप दिया था। गरीबी और गैरबराबरी की समस्या का समाधान बाजारीकरण से माध्यम से कैसे हो सकता है? इस के लिए एक तरफ 'संमृद्धि गरीबों के हित में है' और 'समावेशित संमृद्धि' जैसे जुमले इजाद किये गये हैं। दूसरी तरफ ''पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप'' से शिक्षा और ''माइक्रो फाइनेंस'' से गरीबी निवारण के लक्ष्यों की प्राप्ति के दावे किये गये। पचीस वर्षों के अनुभव के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि ये दावे बेबुनियाद हैं। हमारा यह मानना है कि ऐसा अप्रत्याशित नहीं है- एक समतामूलक समाज के लिए कल्याणकारी व्यवस्था अपरिहार्य है। हम यह भी मानते हैं कि कल्याणकारी व्यवस्था से आर्थिक संमृद्धि के कई अवरोधक भी नियंत्रित हो जाते हैं। वाशिंगटन सहमति का मतलब धुव्रीकरण और धीमी आर्थिक संमृद्धि है जबकि कल्याणकारी व्यवस्था का मतलब आर्थिक बराबरी और ऊंची आर्थिक संमृद्धि हैं।

मौजूदा हालात यह है कि कई उद्योगों में उत्पादन क्षमता अनुसार नहीं हो पा रहा है- कारण मांग की कमी है। आय की गैरबराबरी बढ़ने के साथ मांग में भी कमी आती है। क्योंकि उच्च आय वर्गों की उपभोग की सीमांत प्रवृति काफी कम होती है। मिसाल के लिए इन वर्गों की आमदनी 100 रुपये बढ़ती है तो वे 80 रुपये बचत करते हैं और 20 रुपये उपभोग पर खर्च करते हैं। दूसरी ओर निम्न वर्गों की आमदनी यदि 100 रुपये बढ़ती है तो वे 90 रुपये उपभोग पर खर्च करते हैं जिससे मांग बढ़ती है-उत्पादन क्षमता का अधिक इस्तेमाल होता है। इस तरह बजटीय घाटे के बढ़ने से हमेशा मूल्यवृद्धि नहीं होती है। इससे भारत की मौजूदा परिस्थितियों में उत्पादन क्षमता का इस्तेमाल बढ़ सकता है वशर्ते कि सरकारी व्यय का सीधा प्रभाव निम्न आय वर्गों की आमदनी बढ़ाने का हो और यही कल्याणकारी व्यवस्था की संमृद्धि में सहायक भूमिका है, जिसके माध्यम से कई विकसित देशों ने इन दोनों उद्देश्यों में साथ-साथ सफलता हासिल की थी। यह रास्ता तीव्र आर्थिक संमृद्धि और आर्थिक बराबरी का है जबकि मौजूदा रास्ता धीमी आर्थिक संमृद्धि और आर्थिक गैरबराबरी का है। ●

इस तरह आप पूरे देश को एक बूचड़ख़ाना तो नहीं बना रहे?

प्रियदर्शन

यूपी में अवैध बूचड़खा़नों पर कार्रवाई उचित है। जो कुछ भी अवैध है, उसे किसी भी तरह चलने नहीं देना चाहिए।

लेकिन इस तर्क से चलेंगे तो आपको आधे से ज़्यादा हिंदुस्तान को उजाड़ देना होगा। दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों में जो बहुत बड़ी आबादी झुग्गी-बस्तियों में रहती है, न उसके नाम ज़मीन होती है और न मकान होता है।

कानून के तर्क से वह अवैध आबादी है जिसे वहां रहने का हक़ नहीं है।

इस अवैध आबादी से आपको परेशानी नहीं है क्योंकि यह आपके सबसे ज़रूरी काम निबटाती है। वह सुबह-सुबह आपको अखब़ार और दूध देती है, आपकी कारें साफ़ करती हैं, यहीं से आपकी कामवालियां, बाइयां और आयाएं आती हैं जिनके सहारे आपकी नई मध्यवर्गीय जीवन शैली चल पाती है। आप इस अवैध रिहाइश से तब परेशान होते हैं जब वहां से आपको असुरक्षा और असुविधा का संकट आता है। तब आप इसे उजाड़ने, इसे हटाने, इसे कहीं और बसाने की सौम्य नागरिक मांग करते हैं।

यह आबादी फिर उजाड़ दी जाती है। वह शिकायत नहीं करती, क्योंकि उसे उजड़ने का अभ्यास है।

वह दूसरी जगह जाकर बस जाती है और उस दूसरी जगह से उजाड़ी हुई आबादी यहां आकर बस जाती है।

हिंदुस्तान किसी भी कानून से ज़्यादा इस हक़ीक़त से चलता है।

यह अवैध आबादी वाला हिंदुस्तान क्या करता है?

यह बहुत सारे छोटे-छोटे काम करता है- उत्पादन और सेवाओं से जुड़े ढेर सारे ऐसे काम, जो न हो पाएं तो यह देश चार क़दम चल न पाए।

यह छोटी-छोटी दुकानें चलाता है, फल और सब्ज़ी की रेहड़ी लगाता है, ताले बनाता है, जाड़ों के लिए तोशक और रजाई तैयार करता है, साइकिल, स्कूटर और कार के पंचर तक की दुकानें लगाता है, घरों की मरम्मत या रंगाई करता है, पूरे-पूरे घर बना डालता है, मीट-मछली, अंडा-मुर्गा भी बेचता है, यह छोटे-छोटे ढाबे और होटल चलाता है। इस देश के प्रधानमंत्री ने अगर वाकई चाय बेची है तो उन्हें पता होगा कि ऐसी चाय की दुकानें किसी लाइसेंस से नहीं चलती हैं।

छोटे-छोटे गांव-कस्बों से लेकर महानगरों तक धूल-मिट्टी और सड़क के किनारे चलने वाले इस विराट आर्थिक तंत्र को हमारे नीति-नियामकों की व्यवस्था असंगठित क्षेत्र कहती है। 2004 में असंगठित क्षेत्र के लिए बनाए गए राष्ट्रीय आयोग पर भरोसा करें तो इस देश का 90 फ़ीसदी रोज़गार इसी असंगठित क्षेत्र से आता है। 40 से 50 करोड़ लोग इसी तरह काम करते हैं। देश के सकल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा आधे से ज़्यादा का है।

क्या सरकार इन सब पर पाबंदी लगाएगी? क्या वह इस आधार पर यह पूरा कारोबार बंद करेगी कि इसके लिए कोई लाइसेंस नहीं लिया गया है, कि यहां बहुत सारे क़ायदों पर अमल नहीं होता है?

बिना लाइसेंस वाले बूचड़खा़नों को बंद करने का एक तर्क यह है कि उनसे गंदगी फैलती है, संक्रमण भी फैल सकता है। लेकिन यह तर्क मटन और चिकन के कारोबार से कहीं ज़्यादा उन खत़रनाक उद्योगों पर लागू होता है जो रासायनिक प्रदूषण बढ़ाते हैं, जहां छोटे-छोटे बच्चे बिल्कुल जानलेवा हालात में काम करते हैं।

तर्क यह नही है कि अगर इनके बिना काम नहीं चलता तो इनसे काम लेते रहना चाहिए और इन्हीं हालात में काम लेते रहना चाहिए। तर्क यह है कि किसी भी विकासशील देश के गरीब लोग इन्हीं हालात में जीते हैं। कानून का काम उन्हें धीरे-धीरे अपने साथ लेना और एक मानवीय स्थिति मुहैया कराना है, उनका रोज़गार छीन कर उन्हें किसी शून्य में धकेल देना नहीं है। लोकतंत्र सरकारी और कानूनी मशीनरी से बड़ा होता है। कानून अपने समाज के सुविधासंपन्न लोगों के हाथ का हथियार होता है, वह गरीबों पर गाज की तरह गिरता है। इन गरीबों को राजनीति बचाती है, लोकतंत्र बचाता है। शिष्ट नागरिक आबादी जिन अवैध बस्तियों के लगातार बसते जाने का रोना रोती है, वे दरअसल गरीब आदमी की इसी राजनीतिक ताकत का, उसके सामूहिक वोट का नतीजा होती हैं। अगर यह वोट न होता तो यह गरीब आदमी कहीं नहीं होता।

बूचड़खाऩों पर इतनी आसानी से कार्रवाई इसी वजह से हो रही है कि यह जैसे मान लिया गया है कि यहां जो वोट हैं वे मौजूदा सत्ता और उसकी विचारधारा के साथ नहीं हैं, बल्कि उसकी राष्ट्रीय परियोजना की राह में रोड़ा हैं। इसलिए यह सारी सख्ती और कानूनों पर अमल की ज़िद है। इस ज़िद में प्रशासन को यह फिक्र नहीं है कि ये बूचड़खाऩे बंद होंगे तो इनसे जुड़े समूचे कारोबार का क्या होगा। इनसे जुड़े हजारों-लाखों लोग कहां जाएंगे? बताया जा रहा है कि यूपी में यह सालाना 15000 करोड़ का कारोबार है जिससे क़रीब 25 लाख लोग जुड़े हुए हैं।

यहां आकर अचानक हम पा रहे हैं कि बूचड़खाऩों पर इस कार्रवाई का एक सांप्रदायिक पहलू भी है। यह जान बूझ कर उस पेशे पर हमला है जिसका वास्ता ज़्यादातर एक खास़ तबके से है। इसे हमला कहने की ज़रूरत इसलिए महसूस हो रही है कि इसमें प्रशासन जितनी कार्रवाई कर रहा है, उससे कहीं ज़्यादा सक्रियता वे दस्ते दिखा रहे हैं जो गो प्रेम और गोरक्षा के नाम पर बने हैं। इत्तिफाक से इन्हीं वर्षों में ये हमले और भी बढ़े हैं। तीन तलाक के जिस मुद्दे को मुस्लिम महिलाएं अपने ही संघर्ष से सुप्रीम कोर्ट तक ले आईं, उसे अचानक वे मुस्लिम विरोधी जमातें उछालने लगीं जो ये साबित करने में लगी हैं कि मुसलमान पिछड़ी कौम हैं। इसके पहले इन्हीं लोगों ने लव जेहाद को मुद्दा बनाया। अपनी सामाजिक कुरीतियों से लड़ना तो दूर, उनका पोषण करने वाली ये ताकतें दरअसल सिर्फ राजनीति समझती हैं और इसके लिए समाज को बांटने की किसी भी हद तक जा सकती हैं। उन्हें मालूम है, बूचड़खानों की आड़ में वह विभेद और विभाजन की इस परियोजना को अपने चरम तक ले जा सकती हैं। उन्हें इस बात से फ़र्क नहीं पड़ता कि अपनी आर्थिक असहायता से उपजी हताशा उस सामाजिक अलगाव को और ज़्यादा बढ़ाएगी जो एक राष्ट्र राज्य के तौर पर हमारे लिए चिंता का विषय होना चाहिए।

एक राष्ट्र बहुत सारी चीज़ों से बनता और चलता है। उसे परंपराएं बनाती हैं, तरह-तरह की आस्थाएं बनाती हैं, उसे पारस्परिक सहनशीलता भी बनाती है। उसे कानून के डंडे से नहीं चलाया जा सकता है। कानून के डंडे से देश चलाना चाहेंगे तो लोग बिलबिलाएंगे, पलट कर वार करेंगे। सरकारें उससे भी ज़ोर से वार करेंगी। सरकारी हिंसा हिंसा न भवति। आप पाएंगे कि पूरा देश एक बूचड़खाऩे में बदल रहा है। क्योंकि अभी जो हमला एक तबके पर हो रहा है, वह कल को उन तमाम लोगों पर होगा जो बुद्धि और तर्क की बात करेंगे। तब इस मुल्क को आदमी का घर बनाने की कोशिश बहुत ज़्यादा संघर्ष और बलिदान मांगेगी। ●

दो जघन्य पाशविक अपराधों के संबंध में न्यायपालिका के ऐतिहासिक निर्णय

एल.एस. हरदेनिया

पिछले सप्ताह दो अत्यधिक दिल दहला देने वाली पाशविक (शायद इन दोनों घटनाओं का विवरण देने के लिए ये शब्द कम ही पड़ते हैं। सच पूछा जाए तो इन दोनों घटनाओं के विवरण के लिए किसी भी भाषा के शब्दकोष में उपयुक्त शब्द नहीं है) घटनाओं के संबंध में न्यायपालिका के निर्णय घोषित हुए हैं।

ये दोनों निर्णय मई 2017 में घोषित किए गए। पहले निर्णय का संबंध गुजरात के वर्ष 2002 के नरसंहार के दौरान 19 वर्षीय बिलकीस बानो के सामूहिक बलात्कार से है। दूसरे निर्णय का संबंध वर्ष 2012 में 23 वर्षीय युवती के साथ हुए बलात्कार और बाद में उसकी निर्मम हत्या से है। दोनों घटनाओं ने न सिर्फ देश की बल्कि सारी दुनिया की आत्मा को झकझोर दिया था।

वर्ष 2002 की इस घटना को सर्वोच्च न्यायालय ने नृशंस और बर्बर बताया है। बिलकीस बानो मामले में बंबई की हाईकोर्ट ने 18 लोगों को सज़ा सुनाई है। इन अपराधियों ने न सिर्फ गर्भवती बिलकीस के साथ बलात्कार किया था वरन उसके परिवार के सदस्यों की हत्या भी की थी। कुल मिलाकर इस मामले में 18 लोगों को सज़ा दी गई है।

हाईकोर्ट ने निचली कोर्ट द्वारा 11 व्यक्तियों को दी गई सज़ा को सही करार दिया है और उसके साथ ही सात लोगों के संबंध में निचली अदालत के निर्णय को

निरस्त करते हुए उन्हें सज़ा सुनाई है। इस तरह कुल 18 लोगों को अपराधी माना गया है। इनमें गुजरात पुलिस के अधिकारी तो शामिल हैं ही उसके साथ ही कुछ डॉक्टरों को भी अपराधी पाया गया है। ये डॉक्टर गुजरात के सरकारी अस्पतालों में काम करते थे। हाईकोर्ट ने अपने निर्णय में कहा है कि हमें इस बात का दुःख है कि इस मामले का निर्णय होते-होते 15 वर्ष लग गए। इस मामले के सभी आरोपी उस समय से ही जेल में हैं।

हाईकोर्ट ने अभियोजन की ओर से दी गई अपील को सही माना है। इस अपील के अनुसार पांच पुलिसकर्मियों और दो डॉक्टरों को सज़ा सुनाई गई है। अपने निर्णय में हाईकोर्ट कहती है कि इस मामले में सच और झूठ को इस तरह गड्डमगड्ड किया गया कि सच का पता लगाना एक कठिन काम था। झूठ के पर्दे के पीछे बार-बार सच को छुपाने का प्रयास किया गया। पुलिस और डॉक्टरों ने जांच के दौरान एक नहीं सैंकड़ों गलतियां जानबूझकर कीं। यह उजाले की तरह साफ है कि पुलिस ने पूरा प्रयास किया था कि बलात्कार की घटनाओं को छुपाया जाए। बिलकीस के बयानों को भी और खासकर अतिरिक्त बयानों को साफ ढंग से ईमानदारी से रिकार्ड नहीं किया गया और बिलकीस के मुंह पर लगभग ताला लगा दिया गया जिससे वह न तो सच बात बता सके और न्याय को पुकारने वाली उसकी चीखें न सुनी जा सकें।

जिस दिन घटना हुई थी उस दिन बिलकीस की मेडिकल जांच नहीं करवाई गई। यद्यपि बिलकीस साफ-साफ कह रही थी कि उसके साथ बलात्कार किया गया है और उसके शरीर पर अनेक चोटें हैं। उसे रातभर पुलिस स्टेशन पर रोककर रखा गया जो स्वयं एक अत्यधिक जघन्य अपराध था। फिर दूसरे दिन उसकी मेडिकल जांच कराई गई।

बिलकीस की कई भूमिकाएं थीं। वह स्वयं तो पीड़ित थी ही अपने परिवार के लोगों की हत्या की सूचना देनी वाली भी थी। बिलकीस को उस जगह नहीं ले जाया गया जहां हत्याएं हुईं थीं। न सिर्फ बिलकीस बल्कि जिनकी हत्याएं हुईं थीं उनके अन्य संबंधियों को भी घटनास्थल पर नहीं ले जाया गया। मृत व्यक्तियों का अत्यधिक जल्दबाजी में पोस्टमार्टम कराया गया और बिना किसी देरी के उन्हें सुपुर्द-ए-खाक किया गया। लाशों के साथ नमक से भरी बोरियां रख दी गईं, जिससे मृत शरीर पूरी तरह से गल जाएं।

डॉक्टरों का रवैया तो पूरी तरह दुर्भाग्यपूर्ण और भर्त्सना के योग्य था। उन्होंने पोस्टमार्टम से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं को दबाकर रखा। वैसे यह कहा जा सकता है कि डॉक्टरों का किसी भी जांच से क्या लेनादेना। परंतु यह बात यहां लागू नहीं होती है क्योंकि इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि डॉक्टरों ने सभी शवों का पोस्टमार्टम न तो ठीक से किया और कुछ मामलों में तो किया ही नहीं। एक मामले में तो डॉक्टरों ने सिर्फ इतना ही कहा कि मृत व्यक्ति के प्रायवेट अंगों को चोट पहुंची है। परंतु इस मृत महिला के फोटो देखने से स्पष्ट लगता है कि पहले उसके साथ बलात्कार किया गया और फिर उसकी हत्या की गई। इतने महत्वपूर्ण तथ्य को डॉक्टरों ने छुपाया।

गोधरा में हुए अग्निकांड के तीन दिन बाद बिलकीस बानो अपने परिवार के लगभग 17 सदस्यों के साथ एक ट्रक में बैठकर अपनी जान बचाने के लिए भाग रही थी। उस समय उसकी आयु 19 वर्ष थी और वह पांच महीने से गर्भवती थी। इस ट्रक के पीछे एक हिंसक भीड़ दौड़ रही थी। थोड़ी दूर जाने पर इस हत्यारी भीड़ ने ट्रक को रोक लिया और उसमें बैठे बिलकीस के परिवार के 14 लोगों की हत्या कर दी। इसमें बिलकीस की बच्ची, मां, उसके सौतेले भाई भी शामिल थे। मरने वालों में एक दो साल की बच्ची भी थी। इसके बाद बिलकीस के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया और यह सोचकर उसे वहीं छोड़ दिया गया कि वह जिंदा नहीं है।

किसी ढंग से बची बिलकीस ने स्थानीय पुलिस में रिपोर्ट करने का प्रयास किया। परंतु उसकी रिपोर्ट नहीं लिखी गई। उसके बाद उसने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से संपर्क किया और सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दाखिल की। सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई को आदेश दिया कि वह इस मामले की पूरी जांच करे। परिवार के बचे हुए सदस्यों को आए-दिन धमकियां मिलती थीं, इसलिए उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय से अनुरोध किया कि उनका मामला गुजरात के बाहर ट्रांसफर कर दिया जाए। उनका अनुरोध मंजूर हुआ और बाद में महाराष्ट्र में यह मामला चला। मुंबई की ट्रायल कोर्ट में 19 लोगों के विरूद्ध अपराध कायम किया

गया। माह जनवरी 2008 में 11 लोगों को उम्रकैद की सज़ा सुनाई गई। इन पर सामूहिक बलात्कार और हत्या का आरोप लगाया गया था। सीबीआई ने अपील दाखिल की कि कम से कम तीन व्यक्तियों को तो मृत्युदंड दिया जाए। सज़ा बढ़ाने के अनुरोध को निरस्त करते हुए कोर्ट ने कहा कि बिलकीस से संबंधित पूरे मामले को गुजरात में हुए दंगों और गोधरा की घटना के बाद बने मुस्लिम विरोधी वातावरण के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

सीबीआई ने यह पाया कि स्थानीय पुलिस ने लापरवाही तो बरती ही परंतु जानबूझकर अनेक सबूतों को समाप्त होने दिया और झूठी सूचनाएं थीं। जिन पुलिसकर्मियों और डॉक्टरों को सज़ा दी गई हैं उनके नाम हैं, नर्पत सिंह, इदरीस अब्दुल सैयद, बीकाभाई पटेल, रामसिंह भाभौर, रमनभाई भगोरा, डॉ. अरूण कुमार प्रसाद और डॉ. संगीता कुमार प्रसाद।

निर्णय के बाद मीडिया को जारी एक वक्तव्य में बिलकीस ने कहा ''एक इंसान के रूप में, एक नागरिक के रूप में, एक महिला के रूप में और एक मां के रूप में मेरे समस्त अधिकारों को अत्यधिक निर्दयी तरीके से कुचला गया था। परंतु मुझे अपने देश की लोकतांत्रिक संस्थाओं पर पूरी आस्था थी। मुझे विश्वास है कि अब मैं और मेरा परिवार बिना किसी भय और शंका के साधारण जीवन बिता पाएंगे। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि वे सभी अधिकारी जिन्होंने दुस्साहस करके अपराधियों को बचाया था, जिन्होंने पूरी कौम को नष्ट करने का प्रयास किया था, वे अब कानून के कटघरे में खड़े हैं और उन्हें दंडित किया गया है। यह निर्णय उन अधिकारियों के लिए सबक है जो अपने कर्तव्यों की उपेक्षा कर नागरिकों की रक्षा नहीं करते हैं''।

दूसरा ऐतिहासिक निर्णय

दूसरी घटना का संबंध 23 वर्ष की पैरामेडिकल छात्रा के साथ दिल्ली में हुए जघन्य अपराध से है। 16 दिसंबर की कड़कड़ाती ठंड की रात को एक चलती हुई बस में इस छात्रा के साथ अत्यधिक निर्मम पाशविक अपराध किया गया था। न सिर्फ उसके साथ बलात्कार किया वरन उसकी अत्यधिक क्रूर तरीके से हत्या भी की गई। इस मामले में लिप्त सभी अपराधियों को सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्यु दंड दिया है। इन अपराधियों उच्च न्यायालय पहले ही सजा सुना चुका था परंतु उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर अपने को निर्दोष बताने का प्रयास किया था। उच्चतम न्यायालय ने उनकी अपील को रद्द किया और उनकी सज़ा को कायम रखा।

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और अशोक भूषण की बेंच ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि ''इस मामले में जो बर्बरता और क्रूरता बरती गई थी वह एकदम स्पष्ट है। जिस ढंग से इस छात्रा के साथ व्यवहार किया गया उसकी अत्यधिक तीव्र शब्दों में भर्त्सना करनी चाहिए। ऐसा लगता है कि यह घटना किसी दूसरे विश्व में हुई है। एक ऐसे विश्व में जहां मानवीयता के गुण पाए नहीं जाते हैं। सेक्स की भूख और हिंसा का रौद्र रूप ऐसा था जिसने दुनिया की आत्मा को झकझोर दिया था।''

सर्वोच्च न्यायालय ने अत्यधिक कड़े शब्दों में बार-बार इस घटना की निंदा की है। इस घटना के बाद पूरे देश में भर्त्सना की सुनामी आ गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधियों के तमाम तर्कों को निरस्त करते हुए उनकी सज़ा कायम रखी। अपराधियों ने अपनी अपील में कहा था कि वे गरीब हैं, विवाहित हैं और उनके छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनके वृद्ध मां-बाप हैं और इतने वर्ष जेल में रहने के बाद उन्होंने स्वयं को सुधार लिया है और अब वे इस तरह का अपराध नहीं करेंगे। परंतु उनकी इस अपील को सर्वोच्च न्यायालय ने नहीं माना।

पीड़िता के माँ-बाप उस समय अदालत में थे जब यह ऐतिहासिक निर्णय सुनाया गया। स्वभाविक है उनके चेहरे पर प्रसन्नता थी और वह एक-दूसरे से गले मिल रहे थे। पीड़िता के पिता ने कहा कि मुझे पहले से ही भरोसा था कि सर्वोच्च न्यायालय मौत की सजा के आदेश को कायम रखेगा। उन्होंने यह भी कहा कि यह निर्णय उन सभी के लिए एक संदेश और सबक भी है जो इस तरह के जघन्य अपराध आए-दिन करते हैं।

दिल्ली पुलिस के अधिवक्ता ने कहा कि हमारे देश में कभी-कभी इस तरह के अपराधियों के साथ नरमी बरती जाती है जो उचित नहीं है। पीड़िता की माँ ने भी सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का स्वागत किया और कहा कि यह न्याय मेरे लिए ही नहीं है बल्कि सारे देश के लिए है। सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली पुलिस की प्रशंसा की है जिसने अत्यधिक आधुनिक और वैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर पूरे मामले की जांच की थी। (लेखक वरिष्ठ पत्रकार व धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्ध कार्यकर्ता हैं)

●

गौरक्षा के नाम पर एक और हत्या

राम पुनियानी

हरियाणा के पहलू खान, जयपुर के एक पशु मेले में भैंस खरीदने पहुंचे। उनकी डेयरी है। वे आए तो भैंस खरीदने थे परंतु उन्हें वहां ज्यादा दूध देने वाली एक गाय पसंद आ गई और उन्होंने उसे खरीद लिया। जब वे गाय के साथ अलवर जा रहे थे तब रास्ते में गौरक्षकों ने उन्हें रोक लिया और उनकी जमकर पिटाई लगाई (अप्रैल 5, 2017)। इस पिटाई से पहलू खान की मौत हो गई। जब उन्हें निर्ममतापूर्वक पीटा जा रहा था उस समय वहां पुलिस का कोई अता-पता नहीं था। पुलिस का कहना है कि गायों के कई तस्करों, जो उसकी निगाह से बच निकलते हैं, को गौरक्षकों द्वारा पकड़ा जाता है। यह हत्या दिन दहाड़े की गई और हत्यारे इतने दुःसाहसी थे कि उन्होंने घटना की वीडियो क्लिप को सोशल मीडिया पर शेयर किया। राजस्थान के संबंधित मंत्री ने कहा कि गौरक्षकों द्वारा गाय के तस्करों को पकड़ने में कुछ भी गलत नहीं है परंतु उन्हें कानून अपने हाथों में नहीं लेना चाहिए। भाजपा के मुख्तार अब्बास नकवी ने तो इस तरह की घटना होने से ही इंकार कर दिया। ज्ञातव्य है कि पहलू खान के पास गाय की खरीदी की रसीद और उसे हरियाणा ले जाने की अनुमति से संबंधित सभी कागजात थे।

यह गौरक्षा के नाम पर हत्याओं की श्रृखंला में सबसे ताजा कड़ी है। इसके पहले उत्तरप्रदेश के दादरी में खून की प्यासी एक भीड़, जिसमें कई भाजपाई शामिल थे, ने मोहम्मद अखलाक की इस आरोप में पीट-पीटकर हत्या कर दी थी कि उनके घर में गौमांस रखा है। हमारे देश की पुलिस कितनी साम्प्रदायिक हो गई है यह इससे जाहिर है कि मौहम्मद अखलाक के परिजनों पर ही गौहत्या का मुकदमा कायम कर दिया गया और पहलू खान के विरूद्ध गाय की तस्करी करने के आरोप में प्रकरण दर्ज किया गया है। हम सभी को गुजरात के ऊना की घटना याद है, जहां कुछ दलितों की मरी हुई गाय की खाल उतारने के आरोप में निर्ममतापूर्वक पिटाई लगाई गई थी।

भाजपा-आरएसएस की मोदी सरकार के लगभग तीन वर्ष पूर्व सत्ता में आने के बाद से गौरक्षकों की मनमानी और उनकी हिम्मत में जबरदस्त इजाफा हुआ है। उन्हें ऐसा लगता है कि 'सैयां भए कोतवाल अब डर काहे का'।

इस संबंध में कानून क्या कहता है? काफिला डाट इन में रजनी के. दीक्षित हमें बतातीं हैं कि ''भारत के संविधान में गौहत्या पर प्रतिबंध, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में शामिल है। ये नीति निर्देशक तत्व, राज्य और केन्द्र सरकारों को नीति निर्धारण में पथप्रदर्शन के लिए हैं और इन्हें किसी अदालत द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता। गौहत्या के संबंध में संविधान का अनुच्छेद 48 कहता है 'राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियो से संगठित करने का प्रयास करेगा। और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा''। (https://kafila.online/2017/04/04/bovines-india-and-hinduism-rajani-k-dixit/)

यह स्पष्ट है कि यह प्रतिबंध केवल दुधारू मवेशियों पर लागू होता है अन्यों पर नहीं। यह भी साफ है कि संविधान, गौहत्या के प्रतिषेध की वकालत आर्थिक और पर्यावरणीय उद्धेश्यों से करता है, धार्मिक से नहीं। भाजपा-आरएसएस के सत्ता में आने के बाद से भाजपा-शासित राज्यों में गौरक्षा के लिए अत्यंत कठोर कानून बनाए जा रहे हैं। इसके अलावा, इन राज्यों की सरकारों के दबाव में वहां की पुलिस इन पहले से ही अत्यधिक कठोर कानूनों की गलत व्याख्या कर रही है और निर्दोष लोगों को फंसाया जा रहा है।

यह स्पष्ट है कि जो कानून बनाए जा रहे हैं वे संविधान के नीति निर्देशक तत्वों की भावना के प्रतिकूल हैं। ये कानून केवल गाय, न कि सभी दुधारू पशुओं के वध को प्रतिबंधित करते हैं और इनके पीछे आर्थिक नहीं बल्कि धार्मिक कारण हैं। छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री रमन सिंह का कहना है कि उनकी सरकार गौहत्या करने वालों को फांसी पर लटकाएगी। गुजरात के मुख्यमंत्री विजय रूपाणी चाहते हैं कि गौहत्या की सजा आजीवन कारावास हो। उन्होंने यह संकल्प भी लिया है कि वे गुजरात को पूर्णतः शाकाहारी राज्य बनाएंगे। योगी आदित्यनाथ गौहत्या के विरोधी तो हैं

ही (वैसे भी यह उत्तरप्रदेश में प्रतिबंधित है), वे तो मटन और चिकन बेचने वालों के भी दुश्मन हैं। दादरी घटना के बाद योगी आदित्यनाथ ने हिन्दुओं को बंदूकें उपलब्ध करवाने का प्रस्ताव किया था। योगी से प्रेरणा लेकर उत्तराखंड, मध्यप्रदेश और राजस्थान की भाजपा सरकारें भी पशुवधगृहों और मांस की दुकानों के खिलाफ तरह-तरह की कार्यवाहियां करने की योजनाएं बना रही हैं।

परंतु भाजपा के गौप्रेम का एक दूसरा पक्ष भी है। केरल के मल्लापुरम से भाजपा प्रत्याशी एन. साईंप्रकाश ने यह वायदा किया है कि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आई तो वे अपने चुनाव क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता के गौमांस की उपलब्धता सुनिश्चित करवाएंगे। उनके अनुसार, ''भाजपा को गौमांस भक्षण से कोई आपत्ति नहीं है, वह तो केवल गौहत्या के खिलाफ है! उसने किसी राज्य में गौमांस भक्षण पर प्रतिबंध नहीं लगाया है। भाजपा यह मानती है कि सभी को अपनी पसंद का भोजन करने का पूरा हक है''। केरल और उत्तर-पूर्वी राज्यों में चुनाव प्रचार के दौरान भाजपा ने गौरक्षा के मुद्दे को भूलकर भी नहीं उठाया। असम में तो उसने यह वायदा किया कि वह लोगों के खानपान में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। योगी आदित्यनाथ के उत्तरप्रदेश का मुख्यमंत्री बनने के बाद से दो मुद्दों पर जबरदस्त ढंग से जुनून भडकाया जा रहा है। पहला है गौरक्षा और दूसरा, मांसाहार। मांसाहार करने वालों का खलनायकीकरण किया जा रहा है और मटन और चिकन के व्यापारियों को बेइंतहा परेशान किया जा रहा है। बंगाल में मछली के उपभोग की निंदा की जा रही है। गुजरात में तो सरकार इस तैयारी में है कि सभी नागरिक केवल साग-सब्जी खाएं।

क्या यह धार्मिक मुद्दा है? कतई नहीं। इस मुद्दे पर 'काऊ बेल्ट' (उत्तरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश) में भाजपा की भाषा अन्य राज्यों (केरल, गोवा, कश्मीर और उत्तरपूर्व) से एकदम भिन्न है। 'काऊ बेल्ट' से इतर क्षेत्रों में वह स्थानीय लोगों की खानपान की संस्कृति का सम्मान करने की बात कहती है। परंतु क्या जिन राज्यों में तथाकथित गौरक्षक हुड़दंग मचा रहे हैं, वहां लोगों की खानपान की आदतों में विविधता नहीं है? जाहिर है कि इन क्षेत्रों में भी लोगों की खानपान की अलग-अलग आदतें हैं। गौरक्षक जो कुछ कर रहे हैं वह भारतीय संस्कृति और संवैधानिक मूल्यों और प्रावधानों के खिलाफ है। यह आरएसएस-भाजपा के और ब्राम्हणवादी मूल्यों को पूरे देश पर थोपने का प्रयास है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सबके भयावह आर्थिक नतीजे होंगे। देशभर में विभिन्न स्थानों पर पशु मेलों पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए जा रहे हैं और पशुपालकों व पशुओं का व्यापार करने वालों के साथ क्रूर हिंसा की जा रही है। इससे मांस का निर्यात घटेगा और डेयरी चलाने वाले किसान बर्बाद हो जाएंगे। (अंग्रेजी से हिन्दी रूपांतरण अमरीश हरदेनिया)

(लेखक आई.आई.टी. मुंबई में पढ़ाते थे और सन् 2007 के नेशनल कम्यूनल हार्मोनी एवार्ड से सम्मानित हैं) ●

हमें भी सड़कों पर उतरना होगा - मार्च फॉर साइंस

लाल्टू

कोलकाता में हिंदुत्ववादी लोग 'गर्भ संस्कार' का कार्यक्रम कर रहे हैं। कहा जा रहा है कि वेदों और शास्त्रों में ऐसे उपाय बतलाए गए हैं जो जन्म से पहले ही यह तय कर सकते हैं कि बच्चा आगे जाकर क्या कुछ बनेगा। वैज्ञानिकों और चिंतकों ने चिंता जताई है कि आम लोगों को इस तरह बेवकूफ बनाकर उनमें अंधविश्वास फैलाए जा रहे हैं। पर यह कोई नई बात नहीं है, हमें अचंभा भी नहीं होना चाहिए कि ऐसा हो रहा है। आखिर जब मुल्क का प्रधान मंत्री ही अतीत के तथाकथित विज्ञान पर ऊल-जलूल बयान दे चुका है तो बाक़ी पर क्या उँगली उठाई जाए। पर अमेरिका में वैज्ञानिक सड़क पर उतर आए – दसों हजारों की तादाद में लोगों ने विज्ञान को बचाने के लिए जुलूस निकाला, जिसमें इस वक्त के बड़े से बड़े वैज्ञानिकों ने हिस्सा लिया, यह खबर चौंकाती है। 22 अप्रैल को अर्थ डे यानी धरती दिवस वाले दिन अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन डी सी समेत दुनिया भर में 600 से अधिक शहरों में रैली और जुलूस आयोजित हुए। आयोजकों ने इसे विज्ञान के पक्ष में गैर-राजनैतिक आंदोलन कहा।

आधुनिक विज्ञान ने कुछ मुद्दों पर हमारी बुनियादी सोच में ऐसे बदलाव लाए हैं कि पश्चिमी मुल्कों में भी

इससे कई हलकों में बेचैनी फैली है। पहले वैज्ञानिकों में अधिकतर आस्तिक होते थे, पर अब यह माना जाता है कि विज्ञान हमें नास्तिक बनाता है। जाहिर है धार्मिक संस्थाओं को यह बात पसंद नहीं है। खास तौर पर अमेरिका में पिछली सदी में यह बहस चलती रही है कि कायनात खुदा ने बनाई या जैसा कि आधुनिक विज्ञान में माना जाता है, वह एक बड़े धमाके से शुरु हुई। तरक्की पसंद तबकों के पुरजोर विरोध के बावजूद सरमाएदारों ने डार्विन के विकासवाद और जीवों के विकास में कुदरती चयन के सिद्धांत का भरपूर फायदा खुले बाज़ार के पक्ष में तर्क बढ़ाने के लिए किया। पर आज जब आधुनिक विज्ञान से धरती की आबोहवा में आ रहे खतरनाक बदलावों और तापमान बढ़ने का पता चलता है और सरमाएदारों को इसमें उनकी मुनाफाखोरी पर रोक का खतरा दिखता है, तो विज्ञान का विरोध करना उनके लिए लाजिम हो जाता है। गौरतलब बात यह है कि अमेरिका में विज्ञान को बचाने के लिए जुलूस तब निकला जब वहाँ डोनाल्ड ट्रंप के नेतृत्व में हाल की सबसे ज्यादा दक्षिणपंथी और सरमाएदारों की कट्टर पक्षधर माने जाने वाली सरकार सत्ता में आई। ट्रंप के आने के बाद अनुदानों में भारी कटौती हुई है। इससे संस्थानों के सामने संकट है कि वे शोध-कार्य कैसे चलाएँ। वैज्ञानिक जानकारियों पर आधारित पर्यावरण रक्षा या ऐसे दूसरे कानूनों को हटाया जा रहा है। सरकारी वेबसाइट्स पर से आँकड़े हटाए जाने का खतरा है, कई सरकारी वैज्ञानिकों को या तो उनके काम से रोका गया है या रोके जाने का अंदेशा है। ट्रंप के राष्ट्रपति चुने जाने से पहले से ही उसने वैज्ञानिकों के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी थी। आबोहवा में हो रहे बदलाव पर वौज्ञानिक जानकारी को उसने ढकोसला कहा था। इससे परेशान होकर वैज्ञानिकों ने कई हफ्तों तक सोशल मीडिया आदि में कैंपेन किया और मार्च के लिए पैसे इकट्ठे किए।

हमारे देश में विज्ञान के लिए जनांदोलनों का पुराना इतिहास है। आज़ादी के पहले जहाँ अंग्रेज़ी तालीम जड़ पकड़ चुकी थी और साथ ही अंग्रेज़ी राज का तीखा विरोध भी था, उन इलाकों में, जैसे बंगाल में, सैंकड़ों विज्ञान सभा या क्लब थे। आज़ादी के बाद भी ये क्लब सक्रिय रहे और कहीं-कहीं रेशनलिस्ट यानी तर्कशील आंदोलन की रीढ़ बने। पर गंभीर विज्ञान चर्चा हर जगह आम बातचीत का हिस्सा नहीं बन पाई। खास तौर पर हिन्दीभाषी इलाकों में विज्ञान पिछड़ा रहा और कभी भी मुख्यधारा का हिस्सा नहीं बन पाया। नतीजतन जहाँ आज भी बांग्ला में दर्जनों विज्ञान आधारित पत्रिकाएँ हैं, हिन्दी प्रदेशों में सरकारी पत्रिकाओं को छोड़ कर एक भी ऐसी पत्रिका नहीं है, जिसमें विज्ञान के सामान्य सवालों या खोजों पर केंद्रित चर्चाएँ हों। अंग्रेज़ी में 'द हिन्दू' जैसे अखबार में हफ्ते में एक दिन एक पूरा पन्ना विज्ञान पर निकलता है, पर हिन्दी में ऐसा सोचना भी मुश्किल है।

सत्तर और अस्सी के दशकों में मादरी ज़ुबान में साइंस की तालीम पर बहुत सारा ज़मीनी काम हुआ। मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले से शुरु हुआ 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम' कई जिलाओं में फैला। पहले किशोर भारती और बाद में एकलव्य संस्थाओं ने इस कार्यक्रम को चलाया। अस्सी के दशक के आखिरी सालों में देश भर में विज्ञान के जनांदोलन हुए। अखिल भारतीय जनविज्ञान नेटवर्क नामक संगठन बना, जिसके झंडे तले देश भर में विज्ञान-आंदोलन हुए और हजारों की तादाद में विभिन्न वर्गों से आए लोग गाँधी के जन्मदिन 2 अक्तूबर से यात्रा शुरु करते हुए रमन के जन्मदिन 7 नवंबर को भोपाल में इकट्ठे हुए। इन आंदोलनों में विशुद्ध विज्ञान-कर्मियों के अलावा समाजवादियों से लेकर साम्यवादियों तक हर तरह के वामपंथी सक्रिय थे। इन आंदोलनों का मुख्य नारा था कि विज्ञान जन-जन के लिए है और हर किसी तक पहुँचे।

विज्ञान को आगे बढ़ाने में तरक्कीपसंद सोच के लोगों की भागीदारी को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि आधुनिक विज्ञान का एक स्पष्ट राजनैतिक पक्ष है। अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद यह बराबरी के समाज के लिए हमारी राजनैतिक सोच को आगे बढ़ाता है।

एक कॉलेज की छात्र ऐलिसन वोंग ने http://synapse.ucsf.edu/articles/2017/05/01/march-science-political वेबसाइट पर लिखा कि वह मानती है कि विज्ञान के लिए आंदोलन राजनैतिक है। अमेरिका में इस तरह की बहस जारी है और कई लोग इस विचार के पक्ष-विपक्ष में तर्क दे रहे हैं।

क्या ऐसा जुलूस हमारे यहाँ निकल सकता है? हमारा मुल्क कहने को तो विविधताओं से भरा है, पर ऊँची तालीम और खास तौर पर विज्ञान में सुविधा-संपन्न अगड़ी जातियों के पुरुषों का वर्चस्व है। यह सही है कि उन्हीं में से एक छोटा हिस्सा उन साहसी दोस्तों का है जिन्होंने अपना बहुत सारा वक्त समाज में वैज्ञानिक चेतना फैलाने में लगाया है और हर तरह के तरक्कीपसंद कदम को बढ़ावा दिया है। पिछले साल ऐसे ही एक समूह ने वर्तमान हाकिमों और उनके सांगोपांग द्वारा अंधविश्वासों को विज्ञान कहने पर

विरोध जताया था। इनसे अलग कूढ़मगज पुरातनपंथी हमारे विज्ञान-संस्थानों में भरे हुए हैं, प्रधान मंत्री बकवास ऐसे ही नहीं करते। ये लोग अति-राष्ट्रवादी किस्म के लोग हैं, जो थोड़ा बहुत संस्कृत सीख कर उसे तोड़-मरोड़ कर पुनरुत्थानवादी वक्तव्य देते रहते हैं। कहने को यह ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में पश्चिम के वर्चस्व के खिलाफ लड़ाई है, पर सचमुच यह ज्यादातर पोंगापंथी ही है - वाकई संस्कृत का अच्छा ज्ञान रखने वाले और गंभीर अध्येता इनमें से कम ही लोग होते हैं। इसलिए इन वैज्ञानिकों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे सबके लिए विज्ञान की माँग का समर्थन करें। संयोग की बात है कि डोनाल्ड ट्रंप के पास बकवास करने के लिए वेदों या शास्त्रों का सहारा नहीं है। इसलिए इस मामले में हमारे पोंगापंथी अमेरिकियों से ज्यादा ताकतवर हैं। एक नासमझ पत्रकार ने यह सुझाया है कि सरकारी संस्थानों में होने की वजह से ही भारतीय वैज्ञानिक जुलूस नहीं निकाल सकते, जबकि सच यह है कि निजी संस्थानों में वैज्ञानिक कहीं ज्यादा असुरक्षा की भावना से ग्रस्त होते हैं।

हमारे यहाँ की फासिस्ट संघी सरकार ने भी बुनियादी तालीम और शोध-कार्य पर हमला बोला हुआ है। हर यूनिवर्सिटी में बजट में कटौती हुई है। पंजाब यूनिवर्सिटी में एकमुश्त बेहिस बढ़ाई गई फीस के खिलाफ आंदोलन करने वाले 63 छात्रों पर एक दिन के लिए राजद्रोह का इल्ज़ाम भी लगा दिया गया था, पुलिस की मार जो पड़ी वह अलग। जाहिर है कि वक्त और माहौल हमारे लिए भी न केवल विज्ञान विरोधी है, बल्कि बुनियादी तालीम के खिलाफ है। इसलिए हमें भी सड़कों पर तो उतरना होगा। संघर्ष का कोई विकल्प नहीं बचा है। ●

‘गांधी का स्कूल’ बंद होने के मायने?

कुमार प्रशांत

हाल ही में गुजरात के राजकोट में स्थित 164 साल पुराना एल्फ्रेड हाई स्कूल, जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने पढ़ाई की थी, को बंद कर दिया। यूं तो अल्फ्रेड इंग्लिश हाईस्कूल गांधी की कल्पना का स्कूल नहीं था और न वहाँ उनकी कल्पना की शिक्षा दी जाती थी। लेकिन यहाँ से पढ़कर जो मोहनदास निकला, वह आगे के वर्षों में शिक्षा की इस शैली का और इसके उद्देश्यों का गहरा आलोचक बना और उसने शिक्षा के पूरे दर्शन को नई तरह से संवार कर हमारे सामने रखा। बंद हुए इस स्कूल से महात्मा गांधी का अपमान नहीं हो रहा बल्कि यह अपमान सरकार और गांधी बिरादरी का जरूर है। इन्हीं पहलुओं पर प्रकाश डालता यह आलेख।-का.सं.

महात्मा गांधी गुजरात के थे? हाँ भी, नहीं भी! इस ‘नहीं’ को पहचानकर ही तो अल्बर्ट आइंस्टाइन ने वह बात कही थी कि जो अमर हो गई कि आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस का ऐसा एक आदमी इस पृथ्वी पर चला होगा! उन्होंने गुजरात भी नहीं कहा, भारत भी नहीं कहा, क्योंकि वे इस आदमी के नाप का कोई एक भौगोलिक स्थान नहीं खोज सके। उन्हें यही तर्कसंगत लगा कि सारी पृथ्वी को ही उसकी लीलास्थली बना दी जाए! इंसानों में कोई-कोई ऐसे होते हैं कि किसी भी नाप में बैठते नहीं हैं और तब आपको अपने पैमाने बदलने पड़ते हैं। आइंस्टाइन ने यही किया-पैमाना ही बदल दिया! लेकिन कहने वाले ऐसे होंगे कि जो कहेंगे कि वे जनमे थे गुजरात में तो वे गुजरात के थे! उनका कहना सही भी है! यह सही है तो यह भी सही है कि एक नहीं, गुजरात में अनेक स्थान हैं जिनसे गांधीजी का नाता रहा है। क्या उन सारे स्थानों को हम गांधीजी के नाम पर ‘शून्यवत’ रख सकते हैं? रखना चाहिए? क्या वहाँ के नागरिक ऐसा चाहते हैं?

यह सवाल पूछना जरूरी इसलिए हो गया है कि राजकोट स्थित उस स्कूल के बंद किए जाने की खबर आई है जिसमें गांधीजी की स्कूली पढ़ाई हुई थी। वहाँ की नगरपालिका ने फैसला किया है कि इस स्कूल को बंद कर दिया जाए और इसकी जगह गांधी-स्मृति जैसा कोई म्यूजियम बनाया जाए (क्या यह स्कूल अपने-आप में गांधी की स्मृति नहीं था?) यह वह स्कूल था कि जिसे राजकोट आने वाला वह हर कोई, जिसे गांधी से किसी भी स्तर पर, कैसा भी लगाव रहा हो, देखने जाता था। वहाँ गांधी कहीं भी नहीं थे लेकिन वह धरती थी जिस पर किशोर गांधी चला था, वह हवा थी जो उसे छूकर बही थी, वे दीवारें थीं

जिन्होंने उसे किशोरवय में देखा था, तो यह सब कुछ अलग अहसास तो जगाता था ही। वर्षों पहले जब मैं राजकोट गया था और मैंने उस स्कूल को देखने का आग्रह किया था तब मेजबानों को मेरी बात में कोई तुक नजर नहीं आया था लेकिन 'गांधीवाला और क्या देखना चाहेगा!' जैसी कुछ सहमति बनाकर वे मुझे वहाँ ले गये थे। मैंने बहुत तन्मयता और प्यार से वह स्कूल, उसका वह बरामदा और वहाँ लगी मोहनदास की 'मार्क्सशीट' देखी थी। मैंने बच्चों से जानना चाहा था कि क्या वे जानते हैं और कुछ खास महसूस करते हैं कि यह वह स्कूल है जिसमें महात्मा गांधी भी पढ़ते थे? हाँ, वे सब यह जानते थे लेकिन 'महसूस' कुछ नहीं करते थे। मेरा मन तब भी छोटा हुआ था और कहीं से यह आवाज उठी थी कि यह लंबा चलेगा नहीं !

उसके नहीं चलने का समय आ गया है। स्कूल बंद हो गया है। कारण पूछते हैं आप तो बताता हूँ कि वहाँ का परीक्षाफल बहुत खराब हो चला था, पढ़ने वालों की संख्या लगातार गिरती जा रही थी। जब से शिक्षा को शिक्षा न मानकर एक उद्योग मान लिया गया है और हर दो कौड़ी का 'बहुमूल्य राजनेता' इस 'सेक्टर' में निवेशकर कमाई करने में लग गया है, 'एजुकेशन माफिया' विशेषण सम्माननीय बन गया है, तब से हर स्कूल-कॉलेज का प्रबंधन यही तो देखता है कि वह जो चला रहा है वह बाजार में चल रहा है या नहीं? और यह एकदम तर्कशुद्ध बात है कि जो चलता नहीं है, उसे चलाकर क्यों रखा जाए? सरकार भी और बाजार भी यही सिखा रहे हैं। तो फिर हम राजकोट के एल्फ्रेड हाईस्कूल को ऐसी नसीहत कैसे दे सकते हैं कि उसे अपना स्कूल किसी भी हाल में चलाए ही रखना चाहिए, क्योंकि इस स्कूल में गांधीजी ने पढ़ाई की थी ? तब तो गांधीजी उस स्कूल के लिए भार ही हो जाएंगे न! गांधी का नाम लेने वाले कुछ लोगों को बहुत दर्द हो रहा है कि नगरपालिका ने इस स्कूल को बंद करने का फैसला कैसे किया? उन्हें यह राष्ट्रपिता का अपमान भी लग रहा है और वे इसे 'मोदी सरकार' की गांधी को समूल उखाड़ फेंकने की 'दुष्ट योजना' का एक हिस्सा भी मान रहे हैं। कुछ गांधी वाले हैं कि जो दूसरे गांधीवालों को ललकार रहे हैं कि आगे आओ, गांधी का स्कूल बचाओ!

मैं हैरान हूँ! कोई यह नहीं कह रहा है कि राजकोट के स्कूल की तो छोड़िए, देश में कहीं भी गांधी के कामों को, गांधी की दिशा को बचाने में हम विफल क्यों हो रहे हैं? राजकोट के उस स्कूल में तो गांधी का कुछ भी नहीं है सिवा इसके कि 18 साल की उम्र तक मोहनदास ने वहाँ कुछ वक्त पढ़ाई की थी। लेकिन जिन स्कूलों की आत्मा ही गांधी ने रची थी, उन स्कूलों-संस्थानों का क्या हाल है? 'मोदी सरकार' की 'दुष्ट योजना' तो कई जगहों पर दिखाई-सुनाई देती है, वह होगी, लेकिन जवाब तो हमें भी देना होगा कि हमारी योजना क्या थी जो इस कदर बिखर गई है? गांधी होते तो पहले हमसे ही पूछते कि उनके सारे रचनात्मक कामों की यहाँ-वहाँ कब्रगाह क्यों बन गई? वे हमसे पूछते कि उनके आश्रमों का जनाजा क्यों निकल रहा है? गांधी के स्मृतिचिन्हों और उनके चश्मों को लेकर हाहाकार करने वालों को यह बताने की जरूरत है कि जो खोया है वह चश्मा नहीं है, वह नजर ही खो गई है जो जान की कीमत देकर गांधी ने पैदा की थी! गुजरात की राष्ट्रीय शालाओं का क्या हाल है? उन दो विद्यापीठों का क्या हाल है और उसमें कहाँ, कितने गांधी खोज सकते हैं आप? ये सारी शिक्षण संस्थाएं अंग्रेजों और अंग्रेजियत के वर्चस्व को जड़ से काटने के लिए और आजाद हिंदुस्तान का दिल व दिमाग बनाने के लिए बनाई गई थीं। आज ये सभी सरकारी आश्रय की तलाश में पामाल हुए जा रहे हैं और यहाँ पढ़ व पढ़ा रहे अधिकांश लोग विवशता व विफलता के बोध से भरा जीवन जी रहे हैं। इसमें गांधी का जो अपमान छिपा है वह हमें क्यों नजर नहीं आता है ?

तीन सवाल, जिनके लिए गांधी जिए और मरे, वे थे हिंसा की निरर्थकता समझने वाला समाज बने, सांप्रदायिक सद्भाव की ताकत उस समाज की चालक-शक्ति बने और सारे गांव इस कदर स्वावलंबी व आत्मविश्वासी बनें कि ऊपर की तमाम प्रशासनिक व्यवस्थाओं का नियमन कर सकें। उनकी कल्पना के लोकतंत्र में 'लोक' सच में सबसे पहले आता था। इन तीनों मोर्चों पर आज देश कहाँ खड़ा है? वह खड़ा नहीं है, तेजी से पीछे की तरफ लौट रहा है, लौटाया जा रहा है। उसकी यह उल्टी यात्रा गांधीवालों की सामूहिक विफलता की गवाही देती है जो किसी स्कूल के बंद होने से कहीं ज्यादा गंभीर व बुनियादी बात है। इसकी फिक्र और इसे पलटने की कोशिश तो दिखाई नहीं देती है, औपचारिक बातों व समारोही आयोजनों में सभी लिप्त नजर आते हैं।

आज की केंद्र सरकार और उनकी ही राज्य सरकारें गांधी-मूल्यों को न मानने वाले और गांधी से विपरीत रास्ते की हिमायत करने वाले दर्शन की सरकार है। उसने यह बात कभी छुपाई भी नहीं है। गांधी-हत्या से ले कर गांधी-विचार हत्या तक को इस दर्शन की खुली व छुपी स्वीकृति मिलती रही है। सत्ता का गणित अभी कुछ दूसरा राग अलापने की

नसीहत दे रहा है तो हम कभी-कभार टूटा-फूटा गांधी-राग भी यहाँ से सुन लेते हैं लेकिन इनका असली राग तो कुछ और ही है। इसलिए इनसे क्या शिकायत की कि वे गांधी का स्कूल बंद कर रहे हैं या उसे चलाए रखने में दिलचस्पी नहीं ले रहे! ये सब तो सरस्वती वाले हैं-और भी कितने ही छद्म नामों से इनके संस्थान व संगठन चल रहे हैं। वे निश्चित ही उनकी फिक्र करेंगे क्योंकि उनकी सत्ता का समीकरण वहीं से बनता है। हम उनसे कैसे आशा रख सकते हैं कि वे गांधी-राह का अन्वेषण भी करेंगे?

राजकोट का एल्फ्रेड इंग्लिश हाईस्कूल गांधी की कल्पना का स्कूल भी नहीं था और न वहाँ उनकी कल्पना की शिक्षा दी जाती थी। यहाँ से पढ़ कर जो मोहनदास निकला, वह आगे के वर्षों में शिक्षा की इस शैली का और इसके उद्देश्यों का गहरा आलोचक बना और उसने शिक्षा के पूरे दर्शन को नई तरह से संवार कर हमारे सामने रखा। इसलिए अपने आंतरिक व आर्थिक कारणों से यह स्कूल बंद होता है तो इससे महात्मा गांधी का अपमान नहीं होता है। महात्मा गांधी के 'अपने सारे स्कूल' भी बंद हो रहे हैं, उसकी जिम्मेवारी हमारी है और उसमें हमारा अपमान होता है, यह हमें याद रखना चाहिए। ●

गोरक्षनाथ पीठ : समत्व से हिंदुत्व तक

संजय गौतम

गोरखपुर का गोरखनाथ मंदिर आज भले ही 'हिंदुत्व' की राजनीति का केंद्र बन गया है, लेकिन अपने मूल रूप में इसकी पहचान अलग रही है। वस्तुतः जोगी गोरक्षनाथ, जिन्हें आज गोरखनाथ कहा जाता है, का यह केंद्र रहा है। उन्होंने तत्कालीन बौद्ध परंपरा में अतिभोगवाद व सहजयान से आई विकृतियों एवं ब्राह्मणवाद का विरोध किया। नाथ परंपरा का संस्थापक आदिनाथ को माना जाता है, जो स्वयं शिवस्वरूप थे। इसके बाद उस परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ हुए और फिर गोरखनाथ।

नाथ पंथ के विद्वान आचार्य हजारी प्रदास द्विवेदी ने इसका परिचय देते हुए लिखा है कि बौद्धो, शाक्तों एवं शैवों का एक भारी संप्रदाय था, जो ब्राह्मण एवं वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। गोरखनाथ ने ब्राह्मणवाद, बौद्ध परंपरा में अतिभोगवाद व सहजयान में आई विकृतियों के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने हिंदू-मुसलमान एकता की नींव रखी और ऊँच-नीच, भेदभाव, आडंबरों का विरोध किया। यही कारण है कि नाथ संप्रदाय में बड़ी संख्या में सनातन धर्म से अलगाव के शिकार अस्पृश्य जातियाँ शामिल हुईं। वर्णाश्रम व्यवस्था के विद्रोह करने वाले सर्वाधिक थे।'

नाथ पंथ के बारे में 'सूत संहिता' में कहा गया है कि वह वर्णाश्रम से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात गुरु है, न उससे कोई बड़ा है और न बराबर। इस प्रकार पक्षपात विनिर्मुक्त योगेश्वर को ही 'नाथ पद' की प्राप्ति होती थी। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में कहा गया है कि गुणमय वर्ण और गुणमय आश्रम का अभिमान रखने वाले को गुरु नहीं बनाया जा सकता। ऐसे के साथ गुरु-शिष्य संबंध उसी प्रकार निष्फल है, जिस प्रकार दो स्त्रियों के संबंध से पुत्र प्राप्ति की आशा।'

नाथ साहित्य में प्राप्त उपर्युक्त तथ्यों से एक बात साफ होती है कि यह संप्रदाय तत्कालीन सनातन धर्मी कट्टरता और बौद्ध धर्म में आई विकृतियों से अलग एक मार्ग बना रहा था, जिसके आदि गुरु शिव स्वरूप थे। इस पंथ ने अपनी भेदभाव रहित समतामूलक दृष्टि से देश की निम्नवर्गीय जातियों, जो अस्पृश्यता एवं ऊँच-नीच के भाव के कारण उपेक्षित थीं, को प्रभावित किया, उन्हें एक आश्रय दिया, साथ ही उन्हें जीने का आध्यात्मिक आधार दिया। बहुत से उपेक्षित मुस्लिम भी इस पंथ में आश्रय पाकर योगी या जोगी बने और उन्होंने पूरे देश में प्रेम का प्रसार किया। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में पुस्तकीय विद्वत्ता को सीधे-सीधे चुनौती दी गई—

गृहे-गृहे पुस्तक भार-मारा, पुरे पुरे पंडित यूथ यूथः।
वने-वने तापसवृंद वृंदाः न ब्रह्मवेत्ता न च कर्मकर्ता।।

अर्थात् 'घर-घर में पुस्तक के बोझ ढोने वाले विद्यमान हैं, नगर-नगर में पंडितों की मंडली मौजूद है, वन-वन में तपस्वियों के झुंड वर्तमान है, किंतु ब्रह्म को जानने वाला और इसे पाने का उद्योग करने वाला कोई नहीं है।' इस ब्रह्म को जानने और पाने का उपक्रम ही नाथ पंथ का ध्येय था—

हिंदू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत।।

योगियों के लिए न मंदिर की जरूरत थी, न मस्जिद की। ये तो परमपद की साधना में लगे थे। योगी शंकराचार्य के अद्वैतवाद से भी अलग विचार रखते थे। अद्वैतवाद से श्रेष्ठ दिखाने के लिए नाथपंथ में एक कहानी प्रचलित है, जिसका उल्लेख आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी में अपनी पुस्तक कबीर में किया है, 'शंकराचार्य अपने चार शिष्यों सहित नदी तीर पर बैठे थे। वहाँ कापालिक रूप में भैरव ने कहा कि आप तो संन्यासी हैं, आप मित्र और शत्रु को समान दृष्टि से देखने वाले हैं तो कृपया मुझे अपना सिर काट लेने दीजिए ताकि मैं उससे भैरवी की पूजा कर सकूँ। शंकराचार्य जरा सोच में पड़ गए। यदि दे देते हैं तो पराजय होती है, यदि नहीं देते हैं तो शत्रु-मित्र में तुल्यदृष्टता सिद्ध नहीं होती। शंकर को इस प्रकार शिथिल देखकर उनके एक शिष्य पद्माचार्य ने नृसिंहदेव को स्मरण किया और नृसिंहदेव ने भी तत्काल उग्र भैरव पर आक्रमण किया। तब उग्र भैरव ने कापालिक रूप त्याग करके अपना असली रूप प्रकट किया और प्रसन्न होकर मेघ गंभीर ध्वनि में कहा कि, अहो अद्वैतवाद आज पराजित हुआ। मैंने चालाक मल्ल की भाँति अपने शरीर की हानि करके भी प्रतिद्वंद्वी को चित्त कर दिया। तुम्हारा सिद्धांत पराजित हुआ। आओ युद्ध करो! शंकराचार्य इस ललकार का मुकाबला नहीं कर सके, क्योंकि संन्यासी लोग प्रारब्ध कर्म में विश्वास करते हैं, अर्थात ये मानते हैं कि ज्ञान प्राप्ति हो जाने पर संचित और क्रियमाण कर्म तो जले हुए बीज की तरह बेकार हो जाते हैं, परंतु जिस कर्म का फल मनुष्य भोग रहा है, वह प्रारब्ध कर्म तब भी बना रहता है। परंतु अवधूत योगबल से सभी कर्मों को भस्म कर देते हैं, चाहे वे प्रारब्ध हों, या संचित हों या क्रियमाण हों।'

इस कहानी से आध्यात्मिक दृष्टि का अंतर भी पता चलता है और नाथमत के भीतर व्याप्त श्रेष्ठता बोधका भी। जो महत्वपूर्ण बात है, वह यह कि गोरखनाथ के काल (11वीं-12वीं शताब्दी) एवं उसके बाद इस मत का प्रचार पूरे देश में व्यापक रूप से हुआ। इसकी प्रेम और हठयोग वाणी से प्रभावित होने वालों की संख्या तेजी से बढ़ी। पश्चिम बंगाल के राजा गोपीचंद से लेकर उज्जैन के राजा भतृहरि तक इसका प्रभाव बढ़ा। लोक में भतृहरि ही भरथरी हो गए। जोगिया वस्त्र पहनकर घूमने वाले जोगी गोपीचंद और भरथरी की कथा सारंगी बजाकर सुनाते हैं। बंगाल में भी गोपीचंदेर गान गाया जाता है। इनकी माता मदनावती की कहानी भी गाई जाती है।

आज गोरखपुर के आस-पास के जिले में हजारों की संख्या में जोगियों के गाँव हैं, जिसमें मुस्लिम जोगी भी हैं और हिंदू भी। जोगिया रंग का गूदड़ और कंथा पहनने वाले इन जोगियों की जातिगत पहचान नहीं होती है, लेकिन स्थानीय तौर पर इनकी पहचान की जाती है। हुआ यह कि समय क्रम में बहुत सी जोगी जातियाँ घरबारी हो गईं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'नाथमत को मानने वाली बहुत सी जातियाँ घरबारी हो गई हैं। देश के हर हिस्से में ऐसी जातियों का अस्तित्व है। इनमें बुनाई के पेशे से जुड़ी तमाम जातियाँ हैं। इनमें मुसलमान जोगी भी हैं। पंजाब के गृहस्थ योगियों को रावल भी कहा जाता है और ये लोग भीख माँगकर करामात दिखाकर, हाल देखकर अपनी जीविका चलाते हैं। बंगाल में जोगी या जुगी कहने वाली कई जातियाँ हैं। योगियों का बहुत बड़ा संप्रदाय, अवध, काशी, मगध और बंगाल में फैला हुआ था। ये लोग गृहस्थ थे और पेशा जुलाहे या धुनिये का था। ब्राह्मण धर्म में इनका कोई स्थान नहीं था।' इस समय सारंगी बजाकर भरथरी गाने और भिक्षा माँगनेवाले योगियों को संख्याकम होती जा रही है। धीरे-धीरे ये दूसरे पेशे में भी जा रहे हैं। कुछ तो सस्ते गायन और आर्केस्ट्रा की ओर भी मुड़ रहे हैं।

नाथ मत का प्रभाव मध्यकाल के कवियों पर बहुत गहरा है। संत कवि कबीर, दादू, सूफी कवि मुल्ला दाऊद मलिक मुहम्मद जायसी, नानक, वाजिद, फरीद, भक्त कवि मीरा इत्यादि की कविताओं-भजनों में इस पंथ की गूँज सुनाई पड़ती है। पूरे मध्यकाल में भारी संख्या में इन कवियों ने व्यापक जनमानस में प्रेम एवं समता का प्रचार किया। आवश्यक रूप से नाथ मत की आध्यात्मिक विचारधारा का प्रचार इन्होंने नहीं किया, बल्कि समतामूलक भक्ति, एवं प्रेम की सरिता के प्रवाह को तेज किया। काशी के कबीर ने तो भेदभाव और सभी तरह के पाखंड को अपनी बानी से जीर्ण-शीर्ण किया। उन्होंने तो मोक्ष प्रदायिनी काशी को छोड़कर मगहर में अपना देह त्याग किया। मगहर गोरखपुर से मात्र पच्चीस-तीस किमी. की दूरी पर है। यहाँ आज कबीर की समाधि भी है और उनके नामपर मंदिर भी। दोनों एकदम अगल-बगल हैं, लेकिन आज तक इसे लेकर कोई झगड़ा नहीं हुआ। मगहर और गोरखनाथ मंदिर की भौगोलिक निकटता से लगताहै कि उस समय यह एक ही क्षेत्र के रूप में रहा होगा।

मध्यकालीन सैकड़ों संत कवियों को बहुत समय तक साहित्य की मुख्य धारा में भले ही मान्यता न मिली हो, लेकिन लोकजीवन, लोकगायन और लोकसंस्कृति में इनका

प्रभाव बहुत गहरा था। तमाम लोकगायक इनके पदों को तो गाते ही थे, इन्हें व्यक्तित्व एवं चारित्रिक गुण के बारे में भी गायन करते थे। प्रख्यात कथाकार शिवप्रसाद सिंह ने अपने 'अविसंसा = शवासन+खामख्याली' शीर्षक निबंध में दुर्गाकुण्ड (वाराणसी) पर आयोजित एक कजली दंगल में एक गायक से सुने गए किस्से का उल्लेख किया है। किस्सा बहुत ही अर्थपूर्ण है। गीत में ही किस्सा कहा गया है, 'काशी नगरी में हो गए दासकबीर, सुना हो सांवरिया'। एक बार ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने सोचा कि कबीर की परीक्षा ली जाए। वे सिपाही का वेश धरकर कबीर की गली में आए तो कबीर के पुत्र ने यहाँ कबीर-वबीर नहीं रहते' कहा, और जाकर अपने पिता को बताया। पिता ने उसे झिड़का और अपने ताना-बाना में मस्त हो गए। उसी समय दरवाजा खटका। कबीर ने दरवाजा खोला, स्वागत किया। दाना-पानी के लिए पूछा तो ब्रह्मा जी बोले हम कुर्क अमीन हैं, आपने सरकारी टैक्स नहीं जमा किया है, नीलामी करने आए हैं। कबीर ने अपना सब सामान दिखा दिया। विष्णु ने कहा, ताना-बाना, चरखा-धुनकी सब बेकार है। कबीर ने अपने तन की ओर इशारा किया, शिव ने कहा, मनुष्य का चर्म कौन पूछता है, हाड़-मांस भी बेकार है। कबीर हताश होकर जेल जाने के लिए प्रस्तुत हो गए। ब्रह्मा ने कहा, आपके पास एक चीज है, जिसका दाम लग सकता है।' 'क्या' कबीर हैरानी से बोले। 'तुम्हारी आत्मा' ब्रह्मा ने कहा। आगे गायक वलीलुल्हाइ ने गाया है—

जो कुछ है सब ले लो भईया,
कहूँ कसम से बोल हो सांवरियाऽऽऽ
ई आत्मा नहीं बिकाई
इ त है अनमोल हो सांवरियाऽऽऽ

इस तरह लोकजीवन और लोकगायन में मोल भाव, खरीद-विक्री के बरक्स आत्मा के अनमोल होने की प्रतिष्ठा की जाती थी और जनसामान्य अपने तरीके से जीवन मूल्यों की सर्वोपरिता को जीवन में प्रतिष्ठित करते थे।

गोरखनाथ और उनके चिंतन परंपरा की पैठ जनजीवन में कितनी गहरी थी, यह उपर्युक्त किस्से से पता चलता है। गोरखनाथ के बाद उस पीठ में महंत की परंपरा चली। समय-समय पर इस पीठ का जीर्णोद्धार होता रहा। 1935 में इसी परंपरा में महंत दिग्विजयनाथ हुए, उसके बाद अवैद्यनाथ और मौजूदा महंत योगी आदित्यनाथ, जो प्रदेश के मुख्यमंत्री भी हैं। दिग्विजयनाथ के काल से ही यह मठ हिंदूवादी राजनीति का केंद्र बना और आज यह मंदिर अत्यंत भव्य रूप ग्रहण कर चुका है। महंत अवैद्यनाथ ने राममंदिर आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और संसद सदस्य भी बने। इसी क्रम में योगी आदित्यनाथ भी लगातार गोरखपुर के संसद सदस्य चुने जाते रहे। उन्होंने अपना संगठन हिंदू युवा वाहिनी भी खड़ा किया जो आज प्रभावशाली स्थिति में है।

यह सवाल उठना अत्यंत स्वाभाविक है कि समतामूलक दृष्टि और निम्नवर्गीय जातियों को आश्रय देने वाला यह मठ मौजूदा 'हिंदुत्व' का वाहक कैसे बन गया। हालाँकि 'हिन्दुत्व' के प्रवक्ता इसे जीवनशैली बताते हुए बहस में इसे समदर्शी, समावेशी, भेदभाव न करने वाला, सभी को समाहित करने वाला ही बताते हैं। व्यापक रूप से ये अन्य धर्मों के अनुयायियों को भी 'हिंदुत्व' में समाहित कर लेते हैं,लेकन 'हिन्दुत्व आंदोलन' का जो व्यावहारिक पक्ष है, जो कर्म पक्ष है वह अन्य लोगों में कितना अलगाव, कितनी आशंका पैदा कर रहा है, इसे तर्क से काटने के बजाय महसूस करने की जरूरत है। नाम कुछ भी हो, असल चेहरा तो चरित्र से बनता है। भीतर कुछ, बाहर कुछ या अलग-अलग बात सत्तामारी के लिए तो ठीक है, लेकिन इससे देश, समाज, धर्म के कोमल तंतुओं को कितना नुकसान पहुँचता है, इसे आज हम पाकिस्तान की अंदरूनी स्थिति से समझ सकते हैं।

हमारे देश में राजा जनक को योगी माना जाता है, क्योंकि वह राज-काज संभालते हुए पूर्णतः निर्लिप्त योगी की तरह रहते थे। आज के अधिकांश योगी सत्ता का भोग चाहतेहैं। योगी आदित्यनाथ को भी उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री पद मिल गया है। अब भी क्या वह सभी के साथ समतामूलक व्यवहार का आश्वासन दे पाएँगे, सिर्फ कथन में नहीं, कर्म में भी या अपनी पुरानी फिसलन भरी राह पर भी चलते रहेंगे।इतिहास ने उनहें अवसर दिया है कि वह गोरखनाथ की समतामूलक दृष्टि को समाज में लागू कर पाएँ, कुछ तो ऋण चुकता होगा, लेकिन वह जिस रास्ते सत्ता तक पहुँचे हैं, उसे मिटाना आसान भी नहीं है। फिर भी नाथ पंथ की सर्वप्रिय वाणी की याद दिलाना प्रासंगिक होगा—

काम क्रोध न करिया संग
इसिवा खेलिना गाइबा गीत
टूट करि रखिबा अपना चीत
इसिवा खेलिबा धरिबा ध्यान
अहनिसि कथिवा ब्रह्मज्ञान
हसें खेलै न करे मन भंग
ते निश्चल तथा नाथ के संग

●

नाजुक दौर में है जी.एम. फसलों की बहस

भारत डोगरा

जी.एम. खाद्य फसलों का मामला एक बार फिर सुर्खियों में है। हाल ही में जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रेजल समिति ने जीएम सरसों की खेती को स्वीकृत करने की अनुषंसाएं पर्यावरण मंत्रालय को सौंप दी है। इसके आधार पर केंद्र सरकार जीएम सरसों की व्यवसायिक खेती को मंजूरी दे सकती है। वहीं जीएम फसलों के पक्ष और विरोध में लोगों के अपने-अपने तर्क हैं। कृषि जानकार जीएम/जीई फसलों पर पूरी तरह रोक लगने की पैरवी कर रहे है। जीएम फसलों से होने वाले खतरों की ओर इषारा करता प्रस्तुत आलेख।

11 मई को जेनेटिक इंजीनियरिंग एप्रेजल समिति ने जी.एम.सरसों की खेती को स्वीकृत करने की अपनी संस्तुति पर्यावरण मंत्रालय को सौंप दी है। इसके साथ ही जी.एम. फसलों व विषेषकर जी.एम.खाद्य फसलों पर बहस तेज हो गई है। ध्यान रहे कि इससे पहले भारत में केवल एक जी.एम. फसल उगाई गई है-बीटी कपास। दूसरे शब्दों में जी.एम. सरसों को भारतीय सरकार ने स्वीकार कर लिया तो यह भारत में व्यवसायिक स्तर पर उगाई जाने वाली पहली जी.एम. खाद्य फसल होगी।

जेनेटिक इंजीनियरिंग से प्राप्त फसलों को संक्षेप में जी ई फसल या जी. एम. (जेनेटिकली मोडीफाईड) फसल कहते हैं। सामान्यतः एक ही पौधे की विभिन्न किस्मों से नई किस्में तैयार की जाती रही हैं। जैसे गेहूँ की दो किस्मों से एक नई गेहूँ की किस्म तैयार कर ली जाए। पर जेनेटिक इंजीनियरिंग में किसी भी पौधे या जन्तु के जीन या आनुवंषिक गुण का प्रवेष किसी अन्य पौधे या जीन में करवाया जाता है जैसे आलू के जीन का प्रवेष टमाटर में करवाना या सूअर के जीन का प्रवेष टमाटर में करवाना या मछली के जीन का प्रवेष सोयाबीन में करवाना या मनुष्य के जीन का प्रवेष सुअर में करवाना आदि। यह कार्य जीन बंदूक से पौधे की कोषिका पर बाहरी जीन दाग कर किया जाता है या किसी बैक्टीरिया में बाहरी जीन का प्रवेष कर उससे पौधे की कोषिका का संक्रमण किया जाता है।

जी.एम. फसलें व जेनेटिक इंजीनियरिंग की तकनीक हमारे देष में व विष्व स्तर पर भी इतनी विवादग्रस्त क्यों बनी हुई हैं? इस बारे में भारतीय सरकार महत्वपूर्ण निर्णय लेने के दौर में है। अतः हमारे भविष्य को बहुत गंभीर रूप से प्रभावित करने वाले इस मुद्दे पर इन दिनों विषेष ध्यान देने की जरूरत है।

विषेषकर किसानों तक इस बारे में सही तथ्य पहुँचाना बहुत जरूरी है ताकि वे इन फसलों के बारे में निर्णय लें तो उनके पास केवल बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रचार न हो अपितु सही तथ्य हों। इन फसलों को फैलाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इनके बारे में यह प्रचार बहुत किया है कि जहाँ यह फसलें सबसे अधिक व सबसे पहले फैली हैं, वहाँ उत्पादकता बढ़ी है। पर अमेरिका में इन फसलों की उत्पादकता के बारे में 'फ्रेण्ड्स ऑफ अर्थ' ने बहुत विस्तृत अध्ययन कर बता दिया है कि यह दावे सही नहीं हैं। यूनियन ऑफ कन्सर्ड साईंटिस्टस के अध्ययन से भी यही बात सामने आई है।

विष्व के अनेक जाने-माने वैज्ञानिकों ने 'इंडिपेंडेंट साईन्स पैनल' बनाकर इसके माध्यम से जीएम फसलों के बारे में चेतावनी दी है। इस पैनल में एकत्र हुए विष्व के अनेक देषों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों व विषेषज्ञों ने जी.एम. फसलों पर एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज तैयार किया जिसके निष्कर्ष में उन्होंने कहा है-'जी.एम. फसलों के बारे में जिन लाभों का वायदा किया गया था वे प्राप्त नहीं हुए हैं व यह फसलें खेतों में बढ़ती समस्याएं उपस्थित कर रहीं हैं। अब इस बारे में व्यापक स्वीकृति है कि इन फसलों का प्रसार होने पर ट्रान्सजेनिक प्रदूषण से बचा नहीं जा सकता है। अतः जी.एम. फसलों व गैर जी.एम. फसलों का सह अस्तित्व नहीं हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जी.एम. फसलों की सुरक्षा या सेफ्टी प्रमाणित नहीं हो सकी है। इसके विपरीत पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं जिनसे इन फसलों की सेफ्टी या सुरक्षा संबंधी गंभीर चिंताएं उत्पन्न होती हैं। यदि इनकी उपेक्षा की गई तो स्वास्थ्य व पर्यावरण की ऐसी क्षति होगी जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती है, जिसे फिर ठीक नहीं किया जा सकता है। जी.एम. फसलों को अब दृढ़ता से रिजेक्ट कर देना चाहिए, अस्वीकृत कर देना चाहिए।'

वर्ष 2009-10 में जब बीटी बैंगन के संदर्भ में इस विवाद ने जोर पकड़ा था तब विश्व के 17 ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकों ने भारत के प्रधानमंत्री को इस विषय पर पत्र लिखकर स्पष्ट बताया कि इस विषय पर अब तक हुए अध्ययनों का निष्कर्ष यही है कि जी.एम. फसलों से उत्पादकता नहीं बढ़ी है। इन वैज्ञानिकों ने यह भी कहा है कि विष्व में जी.एम. फसलों का प्रसार बहुत सीमित रहा है व पिछले दषक में इसकी नई फसलें बाजार में नहीं आ सकी हैं व किसान भी इन्हें स्वीकार करने से कतराते रहे हैं। उन्होंने अपने पत्र में कहा कि जी.एम. तकनीक में ऐसी मूलभूत समस्याएँ हैं जिनके कारण कृषि में यह सफल नहीं है। जी.एम. फसलों में उत्पादन व उत्पादकता के मामले में स्थिरता कम है। 17 प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों के पत्र में यह भी कहा गया है कि जलवायु बदलाव के दौर में जी.एम. फसलों से जुड़ी समस्याएँ और बढ़ सकती हैं।

जहाँ जी.एम. फसलों से उत्पादकता टिकाऊ तौर पर बढ़ने की संभावना नगण्य है, वहाँ इतना निष्चित है कि किसान चंद बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर बीज के लिए निर्भर हो जाएंगे व उनका खर्च काफी बढ़ जाएगा।

जी.एम. फसलें स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हो सकती हैं, इससे संबंधित ढेर सारी जानकारी उपलब्ध है व इसके बारे में जन चेतना भी बढ़ रही है। यही वजह है कि अनेक देषों में जी.एम. फसलों व खाद्य पर कड़े प्रतिबंध है। अतः पूरी संभावना है कि जहाँ ऐसे प्रतिबंध होंगे, वहाँ के बाजार का लाभ उठाने में जी.एम. फसल उगाने वाले किसान वंचित हो जाएंगे। यह मांग भी जोर पकड़ रही है कि जी.एम. उत्पाद पर इसका लेबल लगाया जाए। जी.एम. उत्पाद का लेबल लगा होगा तो स्वास्थ्य के बारे में चिंतित लोग इसे न खरीदकर सामान्य उत्पाद को खरीदेंगे व इस कारण भी जी.एम. फसल उगाने वाले किसान की फसल कम बिकेगी या उसकी फसल को कीमत कम मिलेगी।

पर सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह है कि जेनेटिक प्रदूषण से जी.एम. फसलें उन अन्य किसानों के खेतों को भी प्रभावित कर देंगी जो सामान्य फसलें उगा रहे हैं। इस तरह जिन किसानों ने जी.एम. फसलें उगाने से साफ इंकार किया है, उनकी फसलों पर भी इन खतरनाक फसलों का असर हो सकता है।

अब तक उपलब्ध सभी तथ्यों के आधार पर यह मजबूती से कहा जा सकता है कि सभी जी.एम./जीई फसलों पर पूरी तरह रोक लगनी चाहिए। इनके परीक्षणों पर भी इस हद तक रोक लगनी चाहिए ताकि इनसे जेनेटिक प्रदूषण फैलने की कोई संभावना न रहे। देष की कृषि, स्वास्थ्य व पर्यावरण की रक्षा के लिए यह नीति-निर्णय लेना जरूरी है। (सप्रेस) ●

क्या यही है सबका साथ, सबका विकास?

देवेन्द्र शर्मा

पिछले छः दशकों में अगर किसी का विकास नहीं हुआ तो वह है देश के किसान। किसान अक्षम नहीं हैं। वे गरीब हैं क्योंकि उन्हें कंगाल बनाए रखा गया है। आर्थिक सुधार जारी रखने के लिए किसानों की बलि दी जाती रही है और इस आर्थिक सुधार से सिर्फ अमीर और अमीर हुए हैं। सभी सरकारों का लक्ष्य कृषि की उपेक्षा ही रहा ताकि उद्योगों के लिए कृषि की जमीन सस्ते दाम पर अधिग्रहित होती रहे। यह नीति आज तक जारी है। आर्थिक विकास मॉडल से उपजी परिस्थितियों को उजागर करता प्रस्तुत आलेख। (का.सं.)

'99 फीसदी के लिए अर्थव्यवस्था' नामक रिपोर्ट पर अंतरराष्ट्रीय संस्था आक्सफैम का कहना है कि बीते 30 साल में दुनिया की निचले स्तर की 50 फीसदी आबादी की आय कमोबेष सुस्त ही रही है जबकि शीर्ष पर बैठे एक फीसदी लोगों की आय 300 फीसदी तक बढ़ी है। यह बढ़ोत्तरी किसी असाधारण कारोबारी प्रतिभा की देन नहीं बल्कि उनके द्वारा गढ़ी गई आर्थिक डिजाइन का नतीजा है जिससे उनके पास बेशुमार संपत्ति इकट्ठा हो गई।

दुनिया के आठ धनी लोगों के पास आधी आबादी के बराबर संपत्ति है। भारत में इस असमानता पर गौर करें तो वह चैंकाने वाला है। केवल 57 परिवारों के पास 70 फीसदी आबादी के बराबर संपत्ति है। यानि आठ करोड़ 75 लाख लोगों के पास जितना धन उतना धन सिर्फ 57 लोगों के पास है। वैश्विक स्तर पर एक फीसदी आबादी के पास

९९ फीसदी लोगों के बराबर संपत्ति है। भारत में शीर्ष एक फीसदी धनाढ्य लोगों के पास 58 फीसदी लोगों से ज्यादा संपत्ति है।

लेकिन पता नहीं आप में से कितने लोगों को दुनिया में बढ़ रही ऐसी असमानता पर गुस्सा आया होगा। पर वे लोग जरूर फूले समा रहे होंगे जो इसे अपनी उद्यमशीलता और असाधारण प्रतिभा का नतीजा मानते हैं। मैं बताना चाहता हूं कि एक फीसदी ने जो किया वह कोई असाधारण काम नहीं है बल्कि असाधारण उनकी क्षमता है जिससे उन्हें बेशुमार दौलत कमाने में मदद मिली। उन्होंने कुशलतापूर्वक वैष्विक आर्थिक प्रणाली को अपने हितों के मुताबिक बना लिया है।

मैं लंबे समय से कहता आया हूँ कि यह तरक्की आर्थिक डिजाइन का ही नतीजा है। बीते वर्षों में नव उदारवाद आर्थिक एजेंडा, चाहे इसे बाजार सुधार कहें, आर्थिक तरक्की या कुछ भी, तथ्य यही है कि इसे ट्रिकल डाउन थ्योरी के आधार पर गढ़ा गया है। अमीरों के हाथ में ज्यादा से ज्यादा धन दो और उसमें से कुछ हिस्सा खिसकते-खिसकते गरीबों के हाथ में पहुँच जाएगा। अमीरों को अपने कारोबार और उद्योग के लिए ड्राइवर, रसोइए, सेवक और कर्मचारी रखने की जरूरत पड़ेगी ही। जब अमीर गोल्फ खेलेंगे तो चायदान में कुछ न कुछ रकम गिरेगी ही। जब अमीर प्राइवेट एयरक्राफ्ट में घूमेगा तो निश्चित ही उसे पायलट, एयरहोस्टेस, जमीनी कर्मचारी और अन्य की जरूरत पड़ेगी ही। लेकिन अब मैं देख रहा हूँ कि लोग उस इकोनॉमिक ग्रोथ सिस्टम का विरोध कर रहे हैं जिससे सिर्फ मुट्ठीभर लोगों के पास बेषुमार धन पहुँच गया। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम पर 'न्यूयार्क टाइम्स' का कहना है कि इस सभा में गतिशील बहु साझेदारी वैश्विक गवर्नेंस प्रणाली के निर्माण पर ही बात होगी।

वैश्वीकरण की पूरी प्रक्रिया इसी पर आधारित है। मेरे हर लेख में यही उल्लेख रहा है कि वैश्वीकरण ने दुनिया के अमीरों को प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के लिए एकजुट किया है। हरेक देश में अमीर और गरीब हैं और ये अमीर वैश्विक स्तर पर मिलकर बहुसंख्य गरीबों का शोषण कर रहे हैं। चाहे यह विश्व व्यापार संगठन के जरिए चलने वाला अंतरराष्ट्रीय कारोबार हो, मुक्त व्यापार समझौता और ट्रांस पैसिफिक या ट्रांस-एटलांटिक ट्रेड संधि हो, इनका गठन अमीरों की मदद के लिए हुआ है ताकि वे भरपूर लाभ कमा सकें।

डब्ल्यूटीओ के अंतर्गत कई कृषि समझौते हुए हैं। लेकिन मुझे यह बात कभी समझ नहीं आई कि क्यों व्यापार मध्यस्थ, अर्थशास्त्री और नीति निर्माता विकासशील देशों के अरबों किसानों की आजीविका के सर्वनाष को व्यापार में उछाल से हुई संपार्श्विक छति मानते हैं यानि आर्थिक तरक्की के लिए चुकाई गई छोटी-सी कीमत। धनी विकसित राष्ट्रों ने अपनी भारी कृषि सब्सिडी का संरक्षण करते हुए विकासशील देशों को आजीविका को बढ़ावा देने के लिए सस्ते और सब्सिडी वाले कृषि जिंसों को प्रोत्साहित करने के लिए मजबूर किया है। अनाज का आयात करना रोजगार के आयात करने जैसा है और अर्थशास्त्रियों व बुद्धिजीवियों ने इसका समर्थन किया है। बीते 30 साल में 105 विकासशील देश अनाज का आयात करने वाले देषों में शामिल हो गए हैं। सस्ते खाद्य आयात से कृषि आजीविका बर्बाद हो गई है। लेकिन तब तक कोई परवाह नहीं करेगा जब तक अमीर और अमीर हो रहे हैं।

विशेष आर्थिक परिक्षेत्र (एसईजेड) अधिनियम के मामले में संसद ने उसे पास करने में जरा भी समय नहीं गंवाया। वाणिज्य मंत्रालय एसईजेड प्रस्ताव को बिना विलंब के मंजूरी दे देता है। टीवी चैनलों समेत समूचा मीडिया और पैनल के झुंड, जिन्हें एसईजेड की संभावनाओं पर चर्चा के लिए बुलाया गया था, ने इसका गुणगान कर दिया। एसईजेड को आक्रामक रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा था, किसान के जमीन अधिग्रहण के विरोध को दमनकारी नीति से दबा दिया गया। जमीन लेने वाले की सहूलियत के लिए जमीन अधिग्रहण के नियम बदल दिए गए। यह सब आर्थिक तरक्की और रोजगार सृजन के नाम पर हुआ। लेकिन अंततः एसईजेड के उभार के दस साल बाद ये 13 लाख रोजगार सज्जन के वादे की तुलना में सिर्फ 42 हजार लोगों को नौकरियाँ दे पाए। 50 एसईजेड को आंध्र प्रदेश में मंजूरी दी गई जिनमें सिर्फ 15 काम कर रहे हैं। एसईजेड की स्थिति देश के अन्य हिस्सों में ठीक नहीं है।

लेकिन क्या आपने कभी सुना है कि किसी अर्थशास्त्री या नीति निर्माता को इस असफलता के लिए जवाबदेह ठहराया गया है? क्या आपको उन किसानों के बारे में पता है जिन्हें उनकी जमीन का समुचित मुआवजा दिया गया लेकिन जमीन का इस्तेमाल नहीं हुआ और उन्हें अब तक वह लौटाई भी नहीं गई? इससे पता चलता है कि आर्थिक विकास मॉडल कैसे काम करता है। यह उनके लिए अच्छा है जो राज्य के शासन की मदद से जमीन पाने में कामयाब रहे।

जरूरत आर्थिक सुधारों की है यानि संसाधनों पर

निजी क्षेत्र की पकड़ और मजबूत करने की है। और अगर कोई इस दोषपूर्ण आर्थिक सोच पर सवाल उठाता है तो उसे विकास विरोधी के रूप में लाकर खड़ा कर दिया जाएगा। अगर कहीं ऐसा करने वाला किसान है तो उसे उसकी लागत का ऊँचा मूल्य नहीं मिल रहा है? क्यों सरकारी कर्मचारी को तनख्वाह में अधिक बढ़ोतरी दी जाती है, दो डीए वृद्धि हर साल, और कुल 108 भत्ते। देश की 1.6 फीसदी जनता, जो वेतनभोगी है, सरकारें उनके भले के लिए दिन-रात सोचती है। लेकिन जब किसानों की बात आती है, जो देश की आबादी का 52 फीसदी हैं, तो सुनने में आता है कि किसानों को सरकारों और मौसम से कोई उम्मीद नहीं होती।

किसान उसी 99 फीसदी आबादी का हिस्सा हैं जो वर्षों से नजरअंदाज की जा रही है। किसान अक्षम नहीं हैं। वे गरीब हैं क्योंकि उन्हें कंगाल बनाए रखा गया है। आर्थिक सुधार जारी रखने के लिए किसानों की बलि दी जाती रही है और इस आर्थिक सुधार से सिर्फ अमीर और अमीर हुए हैं। यह सबका साथ, सबका विकास कतई नहीं है? (सप्रेस) ●

खाद्य पदार्थ और खान पान की आदतें जीवन के अधिकार का हिस्साः

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश मे बुचरखानों पर सरकार द्वारा की गयी कठोर कार्यवाई पर कहा

अनुभा सिंह

इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने कहा है कि खाद्य पदार्थ, भोजन की आदतें और उसके बिक्री, निर्विवाद रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त जीवन और आजीविका के अधिकार से जुड़ा हुए हैं। न्यायालय ने यह भी बताया कि यूपी में भोजन की आदतों में उत्तरोत्तर विकास हुआ है जो धर्मनिरपेक्ष संस्कृति के एक आवश्यक तत्व के रूप में जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है और यह समाज के सभी वर्गों में व्याप्त है।

न्यायमूर्ति अमरेश प्रताप साही और संजय हरकोली की एक खंडपीठ, नगर पालिका, लखिमपुर, खीरी में एक छोटे से खुदरा मांस दुकान के मालिक द्वारा दायर की गई याचिका पर विचार कर रही थी, जिसमें सरकार द्वारा अवैध बुचरखानो के विरुद्ध चलाए गये अभियान की पृष्ठभूमि में उनका लाइसेंस नवीनीकृत किया जाना था।

इस मुद्दे पर राज्य सरकार ने बेंच से कहा कि उनका इरादा न तो मांस की खपत को रोकना है और न ही सभी कत्लखानों को बंद करना है। उनका इरादा अवैध तौर पर चल रहे कत्लखानों पर प्रतिबंध लगाने और उसके कार्य को विनियमित करना है जैसा की लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया था।

न्यायालय ने कहा कि अतीत में राज्य सरकार की निष्क्रियता को अनुपलब्धता की स्थिति पैदा करने के लिए ढाल की तरह इस्तमाल नही किया जाना चाहिए। क़ानून का अनुपालन के कारण लगभग निषेध की स्थिति पैदा नही की जानी चाहिए जिसमे राज्य सरकार की मिलीभगत जाहिर होती हो।

खंडपीठ ने कहा कि जिन जानवरों के मांस का व्यवसाय होता है, जैसे गोवंश, बकरी, मुर्गा, मछली आदि तथा जिनका खुद्रा बिक्री के लिए कारोबार करना पड़ता है, उन सभी वर्गों के जानवरों के वध और माँस बिक्री से संबंधित मुद्दों पर विचार करना होगा और संबंधित वर्ग के लिए उपलब्ध तरीकों की व्यवस्था करनी होगी।

'इसके अलावा, ऐसे पशुओं को काटने के लिए सुविधाओं की अनुपलब्धता एक बड़ी चिंता है, जिसने इस समस्या को जन्म दिया है। नगर निगमों, स्थानीय निकायों या जिला परिषदों द्वारा प्रदान की जाने वाली किसी भी सुविधा की अनुपस्थिति में, ऐसा व्यापार या पेशा, पूरी तरह बंद हो सकता है और इस व्यापार और व्यवसाय में शामिल लोगों की आजीविका को प्रभावित कर सकता है, जिससे उनके मौलिक अधिकार, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत की गयी है, उसका हनन होगा। इतना ही नहीं, यह उनके व्यापार और पेशे के अलावा उनकी आजीविका से संबंधित मुद्दों के साथ भी जुड़ा हुआ है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का हनन करेगा'।

खान-पान निजी पसंद का मामला है

खंडपीठ ने यह भी कहा कि इस तरह का प्रतिबंध सार्वजनिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करता है, विशेष रूप से ऐसे खाद्य पदार्थों के उपभोक्ताओं को जो इन खाद्य पदार्थों का नियमित उपयोग करते हैं। किंतु राज्य सरकार द्वारा पशुओं के काटने के लिए कोई प्रावधान व

सुविधा उपलब्ध कराए बिना ही कड़ी पुलिसिया निगरानी शुरू कर देने से व्यापार और उपलब्धता बंद है।

'इस प्रकार यह एक व्यक्ति के निजी जीवन को भी प्रभावित करता है, जो अपने उपभोग की निजी पसंद के रूप में ऐसे खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा कर सकते हैं'।

पीठ का मानना था कि गैरकानूनी गतिविधियों पर तत्काल रोक लगाने के लिए साथ साथ क़ानून सम्मत गतिविधि को बढ़ावा देना होता है, विशेष रूप से भोजन, भोजन की आदतों और उसके साथ जुड़े हुए व्यापार, उसे बेचने की सुविधा, जो निर्विवाद रूप से जीवन और जीविका संबंधी मुद्दों से जुड़ा हुआ है।

बेंच ने यह भी बताया कि स्वास्थ्य, संस्कृति, व्यक्तिगत भोजन की आदतों, समाज का सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सस्ती कीमतों पर खाद्य पदार्थों की उपलब्धता, उपलब्धता की सुविधा, सामग्री, गुणवत्ता और जीवन के लिए जरूरी खाद्य पदार्थों की ताकत और इन सभी आपसी प्रतिशर्प्धा के अधिकारों के बीच का संतुलन, संविधान की धर्मनिरपेक्ष छाता के तहत, किसी भी प्रतीत या गुप्त कार्यवाही से पहले विचार विमर्श की आवश्यकता होती है।

'यह उन लोगों के लिए आकस्मिक नहीं होना चाहिए जो प्राप्ति के अंतिम छोर पर हैं और यह कानूनी तौर पर असंवैधानिक भी नहीं होना चाहिए', यह कहा।

न्यायालय ने याचिकाकर्ता की तरह छोटे खुदरा विक्रेताओं के प्रति अपनी चिंताओं को व्यक्त किया, जो अपने मौजूदा लाइसेंस के नवीकरण की मांग कर रहे हैं। पीठ के मुताबिक, गांव में छोटी मांस की दुकानों के गतिविधियों को जिला परिषद द्वारा किए गए उप-नियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। कोर्ट ने व्यक्त किया कि ग्रामीण और शहरी बाजारों में अलग-अलग जनसांख्यिकीय स्थितियों हैं और इसलिए उन्हें स्थानीय कानूनों द्वारा विनियमित किया जाना है। ऐसे क्षेत्रों में जहां सुविधाएं पूरी तरह से नदारद हैं, राज्य सरकार को छोटे छोटे विक्रेताओं की ज़रूरतों पर गौर करना चाहिए जो इस प्रकार की खाद्य सामग्री को बेच कर अपनी आजीविका चलाते हैं और स्थानीय आबादी की रोज़गार की जरूरतों को पूरा करने मे मदद मिलती है साथ ही स्थानीय ज़रूरतों की पूर्ति भी होती है।

न्यायालय ने राज्य सरकार को इस तरह के विचारों के लिए तुरंत एक बैठक बुलाने का आदेश दिया और इन सभी, एक दूसरे से जुड़े हुए मुद्दों को सही परिपेक्ष्य में हल करने के लिए कहा। क्योंकि ये न सिर्फ़ उन लोगों के व्यापार और पेशे पर सीधे रुकावट है जो इसमें शामिल हैं, बल्कि उपभोक्ताओं और जनता को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित करते हैं।

'राज्य सरकार से उम्मीद है कि बैठक आज से 10 दिनों के अंदर होगी और इस तरह के किसी भी विचार-विमर्श का जो भी नतीजा होगा वह अगले तारीख तक इस अदालत को बताया जाय।

(इंडिया लीगल लाइव डॉट कॉम से साभार) ●

चम्पारण सत्याग्रह के सौ साल

अरविन्द मोहन

यह गान्धी के चम्पारण आने का सौंवा साल है। इस अवसर को जिस तरह याद करना चाहिये वह कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। यह तो मुल्क ही गान्धी का माना जाता है इसलिये यह गिनवाने का कोई मतलब नहीं है कि सरकार या गान्धी का नाम लेने वाली पार्टियाँ या फिर गान्धीवादी संस्थाओं/ व्यक्तियों में कौन ज्यादा जिम्मेवार है। पर इससे गान्धी का क्या बनना बिगडना है। यह तो हमारे लिये एक बडा अवसर गंवाने का भी प्रमाण है। सन्योग से यह साल रूस की क्रांति का सौंवा साल भी है। पर उसकी स्थिति हमसे भी बदतर है क्योंकि अभी हाल तक जिसे आधुनिक इतिहास की सबसे बडी क्रांति और तरह-तरह के नामों से जाना जाता था आज उसको याद करने वालों को भी उससे शर्म सी आ रही है। रूसी क्रांति की सबसे नायाब उपलब्धि माने जाने वाले सोवियत संघ के पतन के साथ ही जिस तरह से अन्य साम्यवादी शासन विदा हुए, सोवियत संघ बिखरा और इस क्रांति का जनक माने जाने वाला विचार पस्त हुआ वह अलग चर्चा का विषय है, पर इस बडी घटना और सत्तर-अस्सी साल तक चले प्रयोग के महत्व को नकारना मुश्किल है। इस हिसाब से नवम्बर क्रांति को याद करना भी जरूरी है।

पर अपने पहले भारतीय आन्दोलन में चम्पारण में गान्धी ने जो प्रयोग किये, जिसे बाद में आम तौर पर चम्पारण सत्याग्रह कहा जाता है, उन पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है क्योंकि इस प्रयोग से गान्धी के भारत के अभियान की शुरुआत तो हुई ही, इसने उस ब्रिटिश साम्राज्य की जडें हिलाने की पहल की जिसमें कभी सूर्यास्त न होने की बात बडी शान से कही जाती थी। सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेश ही क्यों अगले तीसेक वर्षों में तो दुनिया से उपनिवेशवाद पूरी तरह विदा हुआ और अब जो मूल्यांकन हो रहे हैं उनसे यह बात साबित हो रही है कि सिर्फ आजादी की ही नहीं उपनिवेशवाद पर चोट करने के मामले में हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन सबसे आगे था। कई देश हमारे आसपास ही औपनिवेशिक शासन से आजाद हुए पर लगातार तीस वर्ष हम ही लडे और चम्पारण से शुरुआत करके गान्धी ने देश को एकजुट करने के साथ सच्चे अर्थ में अकेले ही इस लडाई के लिये तैयार किया।

महात्मा गान्धी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तब अपने राजनैतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर देश देखने का काम सबसे पहले शुरु किया। जाहिर है कि गोखले को उनकी भारत की समझ पर पूरा भरोसा न था। पर उनके देश वापस लौटने तक उनके अफ्रीका के कामों का यश भारत भर में फैल चुका था। और गान्धी खुद से ज्यादा घूमे या जगह-जगह से और तरह-तरह के संगठनों की तरफ से आए न्यौते से वे कई सौ आयोजनों में शामिल हुए। और यही समय है जब सुदूर और एकदम पिछडे चम्पारण जिले से भी उन्हे कुछ बेचैन लोगों का बुलावा आने लगा था। यह बुलावा किसी सम्मान या भाषण वाला न होकर एक लडाई में शामिल होने वाला था। और सम्भवतः गान्धी को भी इस बुलावे में दम नजर आने लगा था तभी वे बिना बहुत शोर शराबे के भी चम्पारण चल दिये। जब वे पटना पहुंचे तब वहाँ उन्हे बहुत भरोसे वाला या मदद करने वाला सहयोगी भी नहीं मिला। पर वे रुके नहीं और लगभग अनजान मुजफ्फरपुर में एक अल्पज्ञात और सिर्फ एकाध बार मिले दादा कृपलानी के भरोसे पहुंचे। वहाँ से जब वे चम्पारण गए तब शासन उनको कहीं आने जाने देने को तैयार न था। लेकिन गान्धी न सिर्फ चम्पारण में रुके और निलहों के आतंक को समाप्त करने की लडाई लडी। इससे चम्पारण के शोषित और कमजोर किसानों का जो फायदा हुआ वह अपनी जगह है, पर गान्धी को और उनके माध्यम से देश में चल रहे उपनिवेश वाद विरोधी आन्दोलन को एक नई जान मिली।

गान्धी का चम्पारण पहुंचना एक युगान्तकारी घटना साबित हुआ पर यह प्रयोग कई मायनों में विलक्षण था और गान्धी के दम को बताने के साथ ही अन्याय सहने वाले जीवंत समाज में प्रतिरोध की शक्ति के उभरने और खुद गान्धी द्वारा अपनी पूरी ईमानदारी, निष्ठा, दम और समझ के साथ स्थानीय लोगों और समस्याओं से एक रिश्ता जोडने और उन हजारों-लाखों द्वारा झट से गान्धी पर भरोसा करके उनको अपनाने की अद्भुद दास्तान भी

है। गान्धी चम्पारण को तो नहीं ही जानते थे, जिन लोगों के बुलावे पर वे गए थे उनके सहयोग की भी बहुत साफ सीमा थी। समाज जातियों सम्प्रदायों में बंटा था और निलहों के पक्ष में शासन तो था ही उनका अपना जाल हर जगह फैला था, हर चीज में जमीन्दारों का शोषण चलता था। गान्धी कुछ तो तैयार होकर आए थे, कुछ चन्दा वगैरह के स्रोत लेकर आए थे, कस्तुरबा समेत कुछ कार्यकर्ता लाने की स्थिति में थे और दक्षिण अफ्रीका के प्रयोग से सामाजिक-राजनैतिक काम करने का एक खाका भी उनके दिमाग में था।

पर जब चम्पारण ही क्यों पूरे बिहार में एक भी पूर्णकालिक कार्यकर्ता न हो, बाहर से आने वाले हर कार्यकर्ता के साथ उसका नौकर और रसोई साथ आ रहा हो, अनजान इलाका, मुश्किल मौसम, बोली और भाषा की भी दिक्कत हो तब अप्रैल की गर्मी से शुरु करके गान्धी किस तरह इलाके में घूमे होंगे, किस तरह सारे नेताओं को साथ भोजन करने तक मनाया होगा, बडे-बडे वकीलों तक को कैरियर छोडने तक प्रेरित कर पाए होंगे और निलहों के विरोध के आन्दोलन को किस तरह शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई जैसे बडे मुद्दों से जोडकर चम्पारण में जमने का फैसला किया होगा यह एक दिलचस्प और प्रेरक कहानी तो है ही यह गान्धी की सम्वाद शैली और उनके सन्देश देने-लेने के तरीके की भी दिलचस्प दास्तान है।

और जब हम तत्कालीन दस्तावेजों और विवरणों पर बारीकी से गौर करते हैं तो साफ लगता है कि गान्धी इस पक्ष को लेकर बहुत सावधान और सचेत थे। एक साथ स्थानीय लोगों से सम्वाद कायम करने के साथ ही ही वे देश- दुनिया से भी बहुत समझ के साथ जुडे थे। संचार के सभी सम्भव साधनों का प्रयोग करने एक साथ उन्होने बहुत समझ के साथ स्थानीय और देसज ब्यौरों का इश्तेमाल किया। पर यह सब सिर्फ प्रबन्धकीय कौशल का मामला नहीं है। शायद उनकी सबसे बडी ताकत वे खुद थे और सत्य के साथ उनके प्रयोग थे। एक भी ब्यौरे में चालाकी या अनुचित लाभ लेने की मंशा नहीं दिखती। और सबको वे अपनी सच्चाई, लगन, स्नेह और समझ से प्रभावित करते हैं। उनका सन्देश और उनकी कीर्ति आन्दोलन से जुडे लोगों ने भी फैलायी और निलहों के जानलेवा नेटवर्क ने भी। लेकिन जैसाकि अब सामने आ रहे दस्तावेज बताते हैं उनकी सबसे ज्यादा तारीफ खुद अंगरेज अधिकारियों ने की है। पर उससे गान्धी का सन्देश नहीं फैला। वह फैला उनके काम, उनके प्रयास और स्थानीय लोगों के एहसान जताने और यशगान करने से जो अभी तक कविता, कहानियों, गानों और कई तरह की प्रस्तुतियों के माध्यम से भी सामने आया।

गान्धी और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये चम्पारण आन्दोलन का क्या महत्व है यह बताने की जरूरत नहीं है। इस आन्दोलन के बाद गान्धी में और राष्ट्रीय आन्दोलन में जो फर्क आए उसे देश-दुनिया ने देखा और समझा है, बल्कि अभी भी समझने की कोशिश की जा रही है। खुद चम्पारण के लोगों के लिए तो अनजान और परदेसी गान्धी आज तक उनकी पहचान और जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। सौ साल होने को आए हैं और दूसरी भी बहुत चीजें हुई हैं- चम्पारण के लोगों के लिए भी और मुल्क के जीवन में भी। पर इस आन्दोलन की छाप को मिटाना मुश्किल है। आज भी जो नेता कुछ करना चाहता है या करने का दिखावा करता है वह लोटा-डोरी लेकर चम्पारण और भितिहरवा पहुंचता है और वहाँ से नई शुरुआत का दावा करता है। अभी गान्धी आन्दोलन के दिखाने लायक अवशेष हैं जिससे यह नाटक भी चलता है और कुछ को भरोसा भी होता है। अभी भी कोई स्थानीय कवि बनता है तो गान्धी को याद करना अपना कर्तव्य मानता है। सैकडों स्थानीय विद्यालयों में गान्धी तरह-तरह से याद किये जाते रहे हैं। खुद उनके बनाए – बताये अनुसार स्थापित कई दर्जन बुनियादी विद्यालय गिरते-पडते हुये भी उनके प्रयोगों को काफी समय तक चलाते रहे हैं।

पर सौ साल बाद भी इस आन्दोलन और उसके नतीजों के बारे में अभी काफी कुछ जानना-समझना बाकी है। सबसे बडी बात तो यही जाननी है कि आखिर बापू का सन्देश चम्पारण के आम लोगों तक कैसे पहुंचा। किसी राजकुमार शुक्ल को तो उन्हे बुलाने की सूझी पर चम्पारण के हजारों लोग गान्धी के पास अपनी आपबीती सुनाने क्यों और कैसे पहुंचे। उन्हे क्या कहकर बुलाया गया और उन्हे क्या मिला। अंगरेज प्रशासन को उनके आने का सन्देश कैसे और क्यों पहुंचा। इससे भी बडी बात यह है कि जिस गान्धी को चम्पारण नक्शे में भी नहीं मालूम था उसने कैसे तिनकठिया प्रणाली को इतना बडा मुद्दा माना और आन्दोलन की सोच ली। फिर यह भी हुआ कि गान्धी को चम्पारण की लगभग सभी समस्याओं (और उसी के साथ देश के ग्रामीण इलाकों की भी) की इतनी समझ बन गई कि वे देश-दुनिया छोडकर वहीं टिके

और अपने साथियों के साथ शिक्षा से लेकर हर क्षेत्र में प्रयोग शुरु किया जिसमें पर्सनल हाइजिन और उसके माध्यम से ग्रामीण दरिद्रता भी शामिल है। इस काम को अकेले करना या सिर्फ पुरुषों के भरोसे करना असम्भव मानकर बापू ने कस्तूरबा और अपने सम्पर्क की अन्य महिलाओं को भी इस काम में लगाया। हम पाते हैं कि बापू का चम्पारण का अनुभव बाद में उत्तर भारत के भूकम्प और फिर देश की हर समस्या के निदान की दिशा में मददगार साबित हुआ।

चम्पारण एक बडा आन्दोलन था भी और दूरगामी असर के साथ-साथ संचार समेत कई मामलों में गान्धी के प्रयोग का एक प्रस्थान विन्दु भी। उस हिसाब से गान्धी के इस पहले भारतीय प्रयोग को अभी जानना-समझना बाकी है। पर यह भी सच है कि जैसे-जैसे समय बीत रहा है यह काम और मुश्किल होता जाएगा। इसलिये इसे अभी रेखांकित करना जरूरी है। और पूरी राजनीति या समाज सेवा को प्रबन्धकीय कौशल और कैरियर समझने वाले दौर में यह काम और भी जरूरी है। यह एक व्यक्ति की असाधारण क्षमताओं को समझने भर के लिये ही नहीं समाज की सोई ऊर्जा को जानने-समझने और उसे जगाने में संचार की भूमिका को जानने के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। पर हम सब जानते हैं कि गान्धी बहुत बडी बडी बातें और क्रांति जैसा भारी-भरकम शब्द इश्तेमाल किए बिना जो कर रहे थे उसे मात्र राजनैतिक लडाई नहीं मानते थे- वे इसे सभ्यताओं की लडाई बताते थे और एक बडी राजनैतिक लडाई के साथ एक देसज विकल्प देने और उसके रचनात्मक कामों को भी समान महत्व देते थे, इन सबको सत्य के प्रयोग मानते थे। वे सब कुछ खुद से जानते-समझते हों इसका दावा उन्होने कभी भी नहीं किया। वे अपने जीवन को सत्य का प्रयोग ही मानते थे। और उन्होने कभी भी अच्छी लग रही चीज को अपनाने से इस चलते कोताही नहीं की कि फलाँ चीज का स्रोत उनकी धारणा के अनुसार उत्तम नहीं है। जिस पश्चिम की सभ्यता को वे शैतानी मानते थे उसकी अच्छी बातों को न गान्धी ने सिर्फ अपने जीवन और राजनैतिक काम में प्रयोग किया बल्कि प्रचारित करके अमर भी बनाया। ये चीजें दक्षिण अफ्रीका के समय से ही लक्षित होने लगी थीं और भारत समेत सभी जगहों पर उसकी चर्चा भी होने लगी थी। चम्पारण ने भारत मेम इन सबकी धमाकेदार शुरुआत कराई और उसके बाद गान्धी ने मुडकर पीछे नहीं देखा।

जब वे चम्पारण पहुंचकर दनादन चम्त्कार करने लगे तभी बेतिया के एसडीओ विलियम लेविस ने लिखा था कि गान्धी पूरब और पश्चिम के अजीबोगरीब मिश्रण हैं। वे अपने विचारों का बडा हिस्सा रस्किन और टालस्टाय, खासकर टालस्टाय से लिया मानते हैं और इन्हे हिन्दुस्तानी जोगियों के आचरण से जोडते हैं। अगर वे सिर्फ पूरब के विचारों से चलते तो एकांत में जाकर ध्यानावस्था में रहते। पश्चिम की शिक्षा ने ही उन्हे सक्रिय सामाजिक सुधारक बनाया है। अब कोई अंगरेज अधिकारी, जो तब के गान्धी के आन्दोलन के निशाने पर हो इस तरह की बातें क्यों लिखेगा इसके कई अर्थ होंगे। एक सीधा सा अर्थ तो पश्चिम की श्रेष्ठता को रेखांकित करना और ऊपर मानना है, पर यह बात उल्लेख करने लायक है कि पूरे चम्पारण आन्दोलन के समय शायद ही किसी अंगरेज अधिकारी ने गान्धी के बारे में कुछ घटिया बात कही हो।

पर गान्धी ने दक्षिण अफ्रीका में जो प्रयोग किए थे और सत्याग्रह से लेकर दूसरी जिन चीजों को एक राजनैतिक हथियार बनाया था उसमें पश्चिम में तब चले प्रयोगों का अनुभव ही आधार बना था पर यह कहना कुछ ज्यादा पश्चिम भक्ति दिखाता है कि गान्धी ने टालस्टाय और रस्किन से ही सब कुछ सीखा था। गान्धी के सबसे अधिक इश्तेमाल हुए हथियार सत्याग्रह को ही पहले पश्चिम के पैसिव रेजिस्टेंस से जोडा गया पर गान्धी ने खुद बहुत विस्तार से बताया है कि यह किस तरह अलग है और इसके लिए किस तरह की नैतिक शक्ति और तैयारी जरूरी है। गान्धी ने अहिंसा को अपनाया और इसे एक राजनैतिक औजार बनाया पर न तो उनकी अहिंसा को अकेले बुद्ध-महावीर से जोडा जा सकता है न पश्चिम के नान-वायलेंस से। अहिंसा को व्यक्तिगत आचरण की चीज की जगह सार्वजनिक आचरण की चीज बनाना, अन्याय दूर करने में हथियार बनाना और प्रशिक्षण से लोगों को, खासकर सार्वजनिक काम में आने वाले सत्याग्रहियों को अहिंसक बनाने का प्रयोग और आचरण तो गान्धी ने किया। गान्धी उस राजनीति और आर्थिक कार्यव्यापार में नैतिकता को स्थापित करने वाले महापुरुष भी दिखाई देते हैं जिसे चाणक्य से लेकर अरस्तू और लगभग सारे राजनैतिक दार्शनिक नैतिकता से अलग चीज मानते रहे थे-युद्ध और प्रेम में हर चीज को जायज बताने वाला जुमला इसी सोच से निकला था। गान्धी की करुणा बुद्ध से आई थी लेकिन सिर्फ बुद्ध वाली न रह गई थी।

उन्होने क्या-क्या और कब-कब किस तरह के प्रयोग

किये यह गिनवाना हमारा मकसद नहीं है। पर यह बात जोर से बताना जरूर मकसद है कि हिन्दुस्तान में तीस साल से ज्यादा की अवधि में गान्धी ने जो भी प्रयोग किये चम्पारण उसकी शुरुआत ही नहीं करता, यह एक बडा और सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण पडाव था। अब यह गिनती मौजूद है कि गान्धी सेवाग्राम में कितने दिन रहे और साबरमती में कितने दिन, दिल्ली में कितना समय गुजारा और लाहौर में कितना, कलकत्ता कितने दिन रहे और मद्रास में कितने दिन, पर इन जगहों पर रहते हुए वे सिर्फ उन्ही जगहों का काम करते रहे हों या उन्होने सारा समय और ध्यान वहीं की चीजों पर लगाया यह कहना गलत होगा। इस लिहाज से चम्पारण यह दावा कर सकता है कि यहाँ गुजारे दस महीने की अवधि का ज्यादातर वक्त और अपना ध्यान उन्होने चम्पारण पर केन्द्रित किया।

दक्षिण अफ्रीका के दो ठिकानों को छोडकर उन्होनें किसी और जगह न तो इतना समय लगाया और ना ही सिर्फ वहीं के काम पर अपना ध्यान लगाया। चम्पारण रहते हुए गान्धी की चिंता का एक अंश तब बन रहे साबरमती आश्रम पर और फिर अहमदाबाद के मजदूरों और खेडा के किसानों की समस्याओं पर था पर गान्धी चम्पारण में रम गए थे। और जैसे ही उन्हे नील की खेती की तिनकठिया प्रणाली के अंत का संकेत मिलने लगा उन्होने भारत में अपने सबसे महत्वपूर्ण प्रयोगों की धूम-धडाके से शुरुआत की। वे चम्पारण आने के कुछ समय बाद ही सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसाइटी के डा। श्रीहरिकृष्ण देव को साथ लेकर आए थे और स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के मामलों में उनकी सेवाएँ लेने लगे थे। और जैसे ही उन्हे चम्पारण की सदियों पुरानी नील की खेती की बीमारी जाती लगी उन्होने, बीमारी, महामारी, साफ सफाई अर्थात हाइजिन, शिक्षा, शिल्पकारी, खादी, गौ-सदन बनाने जैसे न जाने कितने ही प्रयोग शुरु किये और बिहार के अपने सारे पुराने सहयोगियों को तो लगाया ही बाहर से रचनात्मक काम वाले पन्द्रह कार्यकर्ता ले आए। इस काम में उन्होने कस्तूरबा और देवदास गान्धी को भी लगाया और महादेव देसाई तथा कृपलानी जैसे सहयोगियों को भी।

और जब वे दस महीने बाद अहमदाबाद आन्दोलन के क्रम में चम्पारण से निकले तो उन्हे अफसोस रहा कि वे अपने कई प्रयोगों को अधूरा छोडकर जा रहे हैं और कुछ प्रयोग शुरु ही नहीं कर पाए। पर बीसेक साल बाद जब वे गान्धी सेवा संघ के जलसे में वृन्दावन, चम्पारण आए तो यह देखकर गदगद हो गए कि उनके प्रयोग न सिर्फ फल-फूल रहे हैं बल्कि कई कदम आगे बढ चुके हैं। गान्धी बीच में भी चम्पारण आते-जाते रहे थे।

इतिहास गवाह है कि गान्धी खुद भी चम्पारण के बाद रुके नहीं थे, बल्कि उनकी रफ्तार तेज हुई थी। और जो प्रयोग उन्होने चम्पारण में किए थे उसे बडे पैमाने पर देश भर में चलाया गया। कांग्रेस की कमान हाथ में आते ही गान्धी ने एक करोड चवन्निया सदस्य बनाने के साथ पच्चीस लाख चरखे चलवाने का अभियान भी छेडा। पहले का कोई कांग्रेसी या हमारा कथित राष्ट्रीय नेता यह संख्या सोच भी नहीं सकता था। शिक्षा का जो अनगढ प्रयोग चम्पारण में शुरु हुआ वह थोडे दिनों में ही बुनियादी तालीम आन्दोलन के रूप में देशव्यापी हुआ और चम्पारण समेत पूरे मुल्क में राष्ट्रीय स्कूल और कालेज ही नहीं विश्वविद्यालय खोलने का आन्दोलन ही खडा हो गया। गान्धी ने छुआछूत, विकेन्द्रित उत्पादन, वितरण और खपत की व्यवस्था शुरु की, सफाई, शराबबन्दी, प्राकृतिक चिकित्सा, उन्नत खेती और पशुपालन से लेकर कुटीर उद्योग जैसे जाने कितने प्रयोग किये जिन्हे गिनवाने और जिनके बुनियादी पक्षों की चर्चा करने का सामर्थ्य इस लेखक में नहीं है। साथ ही बारीक की जगह मोटी खादी, बहुत सुघड की जगह अनगढ चीज इश्तेमाल का, बाहरी की जगह स्थानीय उत्पाद के उपयोग का प्रयोग शुरु हुआ। चम्पारण में बने पहले स्कूलों में कोई भी निर्माण सामग्री दूर की इश्तेमाल न करने की प्राथमिक शर्त थी।

यह कहा जा सकता है कि चम्पारण आन्दोलन में लोगों और अपने अद्धुद सहयोगियों का व्यवहार देखकर गान्धी ने इनमें से अधिकांश मामलों में पहल कर दी थी जिसमें कुछ उसी रूप में आगे बढे तो कई में आगे चलकर बदलाव भी दिखता है। पर यह लेखक अपने सीमित अध्ययन से ही यह दावा कर सकता है कि गान्धी ने दस महीने की छोटी अवधि में चम्पारण से, यहाँ के लोगों से और अपने सहयोगियों के व्यवहार और आचरण से भी काफी कुछ ऐसा सीखा जिसका असर पूरे जीवन रहा, पूरे आन्दोलन पर रहा। और उनके सहयोगियों पर ही नहीं चम्पारण पर भी गान्धी का ऐसा रंग चढा जो जीवन भर बना रहा और आज का चम्पारण अब राजा जनक। सीता, बाल्मीकि, आल्हा-ऊदल, मौर्य, कौटिल्य, अशोक जैसे प्रतापी लोगों के नाम की जगह गान्धी के चम्पारण के नाम से जाना जाता है और इस बात पर गर्व अनुभव करता

है। गान्धी के चम्पारण प्रयोग और रूस की क्रांति की एक और चर्चा यहाँ जरूरी लगती है। गान्धी जब दक्षिण अफ्रीका में बसे हिन्दुस्तानियों भर की लडाई लड रहे थे और पूरे समाज को अपना मानने के साथ खुद को आदर्श सत्याग्रही बनाने के साथ अपने परिवार के लोगों और साथियों को भी इस प्रयोग में शामिल करने की शुरुआत कर रहे थे तब तक उस साम्यवादी विचारधारा ने अपनी सारी वैचारिक तैयारियाँ पूरी कर ली थीं जिसे आधार बनाकर लेनिन और उनके साथियों ने रूसी जार की सत्ता पलट कर सर्वहारा का शासन स्थापित करने का दावा किया। जब से यूरोप के समाज में पूंजीवादी विकास से कुछ बुनियादी असंतुलन और इससे भी ज्यादा, इस असंतुलन के प्रति जागृति आने लगी बराबरी की चाह वाली एक विचारधारा की बहस तेज होती गई और मार्क्स-एंजिल्स ने उसे काफी हद तक फाइनल करके क्रांति करने का रास्ता और उसके लिए जरूरी हथियार बनाने का तरीका बता दिया था। पर जब क्रांति युरोप के किसी विकसित देश की जगह रूस जैसे पिछडे देश में हुई तब इस दर्शन के नायकों को यह स्पष्टीकरण ढूंढना पडा कि ऐसा क्यों हुआ है। यही कसरत फिर करनी पडी जब युरोप के औद्योगिक समाज की जगह चीन के खेतिहर समाज में क्रांति हुई जबकि मार्क्सवाद के अनुसार किसान क्रांति कर ही नहीं सकते थे। जब युरोप के देशों द्वारा दुनिया भर में कायम साम्राज्यवाद की कारगुजारियाँ समझ आने लगीं तब उसकी अलग व्याख्या की जरूरत लगी। जब पूर्वी युरोप के कम विकसित देशों में क्रांति को 'निर्यात' करने में सफलता मिली और ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन वगैरह लाख जतन के बावजूद बाहर रह गए तो उसकी सफाई देनी पडी, जब रूस से दमन-उत्पीडन और मजदूरों के ज्यादा शोशण की खबरें आने लग़ीं तो उसे साम्राज्यवादी दुष्प्रचार करार दिया गया, जब पूर्वी युरोप के छात्र लोकतंत्र की मांग लेकर निकले या किसी बौद्धिक ने आजादी की बात उठाई तो उन्हे संशोधनवादी कहा गया और जब सोवियत संघ और चीन में बदलाव शुरु हुए तो उस पर भी सवाल उठे।

अंत में जब सोवियत संघ का पतन हो गया तब ज्यादातर साम्यवादी चुप्पी साध गए और अमेरिकापरस्त जमात विचारधारा और इतिहास से लेकर जाने किन किन चीजों के अंत की घोषणा करने लगा। और उसने जो वैश्वीकरण, उदारीकरण और भूमन्डलीकरण के रूप में जो समाधान दुनिया को देना चाहा उसका क्रूर और लुटेरा चेहरा समझने-देखने में किसी को भी मुश्किल नहीं हुई। यह उपनिवेशवाद और पुराने साम्राज्यवाद से भी ज्यादा शोषक और डरावना लगने लगा। और ज्यादा समय नहीं हुआ जब कभी सब-प्राइम संकट तो कभी युरोप की एकता और बिखराव जैसे अनेक कदमों से इस मुहिम के कदम रुक से गए हैं। दूसरी ओर युरोप-अमेरिका के ही काफी लोगों ने इस मुहिम का चरित्र जानकर विरोध शुरु किया और दुनिया भर के गरीब मुल्कों से उठने वाली आवाजों के साथ अपनी आवाज मिलाई। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की मुहिम ने गरीब मुल्कों में भी अपने समर्थक बनाए हैं-खासकर वहाँ के शासक जमात और अमीर वर्ग में। पर विरोध का स्वर स्वतःस्फूर्त है और काफी हद तक सरकारी अभियानों के समान ताकतवर होने लगा है।

पर आज यह सिर्फ ताकत और संख्या बल का मामला नहीं रह गया है-विरोध करने वाले दुनिया की विविधताओं का, टिकाऊ विकास के माडल का, विकेन्द्रीकरण का, स्थानीय समूहों का उनके प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार को उसी तरह स्वीकार करने लगे हैं जो गान्धी के दर्शन और आचरण का केन्द्रीय तत्व है। वे गान्धी को विकल्प के रूप में पेश भी करने लगे हैं। गान्धी अब तक दुनिया भर में अन्याय का प्रतिरोध करने वाली जमातों में (जैसे इजरायल विरोधी फिलीस्तीनियों) , अहिंसक विरोध आन्दोलनों में (जैसे दलाई लामा और तिब्बत की आजादी के आन्दोलन) पश्चिमी माडल के लोकतंत्र का विकल्प चाहने वालों (जैसे बर्मा की नेता आंग सांग सू की) , सोवियत माडल के साम्यवाद से बगावत करने वालों (जैसे पोलैंड के श्रमिक नेता लेख वालेसा), हर तरह के अन्याय से लडने वालों (जैसे दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद विरोधी आन्दोलन) के लिए प्रेरणा के स्रोत हुआ करते थे, अब वे एक वैकल्पिक विश्व व्यवस्था चाहने वालों की आशा के केन्द्र बने हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि गान्धी को, उनके आन्दोलनों को उनके प्रयोगों को ज्यादा बारीकी से देखा जाए और अपनी जरूरतों के लायक समाधान या समाधान तक ले जाने वाली राह तलाशने का काम किया जाए।

इतिहास को दिशा दिखाने वाले राजकुमार शुक्ल

चम्पारण सत्याग्रह में गान्धी के बाद अगर किसी का नाम लिया जाता है तो वे राजकुमार शुक्ल ही हैं। पर एक सामान्य किसान परिवार और कम हैसियत वाला होकर भी जो काम किया उसका पूरा श्रेय इस अकेले गौरव से पूरा

नहीं होता क्योंकि इस आन्दोलन और राजनीति में उन्होने कुछ पाया नहीं, अपना सब कुछ गंवाया ही। यह सही है कि उनकी बेलवा कोठी के मैनेजर एम्मन से निजी रंजिश भी थी लेकिन चाणक्य की तरह शिखा खोलकर अंगरेजी सत्ता को उखाडने की प्रतिज्ञा करना और निभाना साधारण बात नहीं है। जिस दिन एम्मन के उनके मुरली भरहवा स्थित खेत और गोवास पर लगी आलू की फसल उजडवाई और अपमानित कराने के लिए अपने गुंडों से कई और काम कराए उसी दिन से जैसे शुक्ल जी के पैरों में घनचक्कर लग गया। सौभाग्य से उनकी डायरी उनके परिवार के लोग अभी भी रखे हुए हैं और अब तो यह प्रकाशित भी हो गई है। इसे देखकर यह लगता है कि शुक्लजी और उनका घोडा शायद ही किसी दिन चैन से बैठे हों। पर दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि 1917 के अलावा कई और डायरियाँ थीं जो इधर गायब हुई हैं और उनकी कोई कापी भी उपलब्ध नहीं है।

इतना ही नहीं उन्होने किसी दिन अपनी साठ एकड की खेती और इलाहाबाद के किसी सज्जान की बीसेक एकड की खेती कराने का जिम्मा भी निभाया होगा यह भी समझना मुश्किल है। उनके परिवार के पास दो सौ पशु होने की बात भी सामने आती है। उनका जन्म 1861 में कोलाहल शुक्ल के यहाँ सतवरिया, चनपटिया में हुआ था। उनका एक घर मुरली भरहवा में भी था जो इस जगह से ज्यादा दूर न था। उनकी पढाई बहुत सामान्य थी और पहले रामनगर राज और बाद में बेतिया राज में उन्होने नौकरी भी की थी। बेतिया में वे रानी के स्टाफ में थे पर राजनैतिक कामों के लिये ही उन्होने नौकरी छोड दी। शुरु में तो वे भी शेख गुलाब और शीतल राय वाली मंडली में शामिल हुये और किसानों को संगठित करने के लिये काफी भागदौड की। लेकिन वे जिले के उन कुछ लोगों में थे जिन्होने एहसास कर लिया कि अंगरेजों से लडाई अब पुराने तरीके से नहीं जीती जा सकती। फिर उन्होने पीर मुहम्मद मूनिस के साथ मिलकर गान्धी को चम्पारण आने का न्यौता दिया और एक बार उनकी हल्की स्वीकृति पाने के बाद तो इसे जीवन-मरण का अवसर समझकर उनके पीछे ही लग गए और चम्पारण लाकर ही माने। गान्धी को उनकी क्षमताओं पर अविश्वास हुआ और यह बात उन्होने अपने भतीजे मगनलाल गान्धी को लिखी चिट्ठी में (देखें परिशिष्ट-1) भी लिखी है। पर वही गान्धी और कस्तूरबा उन्हे बहुत स्नेह देने लगे और उनके जीवन के आखिरी समय तक स्नेह बनाए रहे। वे गान्धी को मनाने और लाने के लिये कहाँ-कहाँ गए यह सब अब इतिहास का हिस्सा है। राजकुमार शुक्ल क्या थे इसे लेकर अब इतिहास लिखने वालों में मतभेद है। यह काफी कुछ इतिहासकारों के अपने अहँ, आंख पर पट्टी बन गई विचारधारा और सबसे बढकर शुक्ल जी के सीधेपन से जुडी चीज है। एक इतिहासकार ने आधिकारिक इतिहास लिखते हुए शुक्ल जी को सिर्फ एक फुटनोट भर में सिमटाने लायक माना तो दूसरे ने उन्हे पूरा अन्दोलन खडा करने वाला और गान्धी को उनके आन्दोलन को हडप लेने वाला बताया है। पर इस सीधे-सादे नायक को शायद ही किसी ने ठीक समझा। गान्धी ने भी राजकुमार शुक्ल के साथ पहली बार पटना पहुंचने पर अपनी यात्रा की व्यवस्था ठीक न देखकर खुद से कमान हाथ में ली और अपने भतीजे मगनलाल गान्धी को पत्र में लिखा कि राजकुमार शुक्ल एकदम भोले हैं और पटना में उनकी कोई खास जान पहचान नहीं है इसलिये अब मुझे ही सब कुछ करना होगा। जब वे लोग मुजफ्फरपुर पहुंचे तब गान्धी तो प्लांटर्स एसोशिएशन और कमिश्नर से मिलने में तथा स्थानीय वकीलों से चर्चा में लगे पर शुक्ल चम्पारण के उस पट्टी जसौली गांव की तरफ चल दिये जहाँ नया-नया निलहा जुल्म हुआ था और जहाँ गान्धी सबसे पहले जाना चाह्ते थे। गान्धी के पूरे चम्पारण सत्याग्रह में उनकी भूमिका भागादौडी करके गान्धी के काम को आसान और चम्पारण की मुश्किल दूर कराने की थी। उनका अपना अहँ या सुख-दुख भी कुछ है यह उस पूरे दौर की उनकी उपलब्ध डायरी से कहीं पता नहीं चलता। पूरी डायरी से कहीं कहीं उनके खर्च का अन्दाजा तो होता है पर उनकी अपनी सम्पत्ति या आमदनी का अन्दाजा नहीं होता। सो यह जानकर हैरानी होती है कि उनके पास करीब 60 बीघा से ज्यादा खेती थी, और 200 पशुधन था और बेतिया राजदरबार की नौकरी थी। चार साल नौकरी के बाद उन्होने निलहों के खिलाफ लडाई को ही मुख्य काम बना लिया और फिर जैसे उन पर कोई जुनून सवार हो गया, पैरों में चकरघिन्नी लग गई। खेती की उपज के साथ खेत बेचकर पैसे खर्च करते रहे। गान्धी के चम्पारण से विदा होने के बाद जिले में कांग्रेस को खडा करने और उनके द्वारा शुरु किये गए स्कूलों को जिन्दा रखने में जुटे रहे। फिर उनको बीमारियों ने जकड लिया। जब मात्र 54 साल की उम्र में उनकी मौत हुई तो नवयुवकों ने चन्दा जुटाकर उनका अंतिम संस्कार किया।

शुक्लजी बिहार कांग्रेस के अधिवेशन और फिर

कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में चम्पारण से बाजाप्ता एक टोली के साथ गए थे। चम्पारण के मुकदमों के क्रम में उनकी भेंट ब्रजकिशोर प्रसाद और राजेन्द्र प्रसाद जैसे वकीलों से भी थी। जब राजकुमार शुक्ल और पीर मुहम्मद मूनिस जैसे स्थानीय लोगों ने तक के कांग्रेस के बडे नेताओं की मदद लेने की सोची तब विभाजन के बाद लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होना तय हुआ तो तिलक, मालवीय, मोतीलाल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और (मुस्लिम लीग के नेता) मजहरुल हक तथा जिन्ना समेत सारे लोग आने वाले थे। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह करके देश में बहुत चर्चित हुये गान्धी भी पहली बार कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने वाले थे। वहाँ ब्रजकिशोर प्रसाद ने, जो तब बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य थे और निलहों के खिलाफ लडते थे, चम्पारण की स्थिति पर प्रस्ताव रखा जो पास हुआ। इस प्रस्ताव पर राजकुमार शुक्ल भी बोले जो किसी किसान द्वारा कांग्रेस अधिवेशन में भाषण करने का पहला मौका था।

पर शुक्ल जी भाषण करने से ज्यादा किसी बडे नेता को चम्पारण लाने की तैयारी से लखनऊ गए थे। तब कांग्रेस के सभी नेताओं में तिलक का प्रभाव सबसे ज्यादा था। सो वे सबसे पहले उनके पास ही विनती लेकर गए पर उन्होने यह कहकर मना कर दिया कि अभी हमारे सामने देश की स्वतंत्रता का प्रश्न है। फिर वे महामना मालवीय के पास गए तब उन्होने यह कहकर शुक्ल जी को निराश किया कि जब देश आजाद हो जाएगा तो इस तरह की सारी समस्याएँ खुद दूर हो जाएंगी। फिर वे गान्धी के पास गए और पैर पर गिरकर उनसे चम्पारण का सवाल हाथ में लेने का आग्रह किया। गान्धी ने भी फिलहाल मुझे छोड दीजिए। मैं खुद देखे बिना कोई राय नहीं बनाउंगा। तब शुक्लजी ब्रकिशोर बाबू को गान्धी की छावनी में ले आए कि यही वकील बाबू सब कुछ बता देंगे। शुक्ल जी लगे रहे तब गान्धी ने एक दिन के लिए चम्पारण आने की बात मानी। जब अधिवेशन के बाद गान्धी कानपुर गए तो शुक्लजी वहाँ भी विराजमान थे जो गणेश शंकर विद्यार्थी से मिलने गए थे। शुक्लजी ने कहा कि यहाँ से चम्पारण पास है, चले चलिए। तब गान्धी ने कलकत्ता का अपना कार्यक्रम बताया और वहाँ से चम्पारण चलने पर स्वीकृति दी। और राजकुमार शुक्ल उनके साथ लग ही गए। जब अधिवेशन के बाद गान्धी इलाहाबाद और कानपुर गए और अखबारों के सम्पादकों से मिलने और गंगा स्नान करने अगे तब भी शुक्ल जी उनसे टकराए और उनका वायदा याद दिलाया। उन्होने गान्धी को जो पहली चिट्ठी लिखी (देखें, परिशिष्ट-1) उसमें लिखा था कि चम्पारण की 19 लाख दुखी दुखी प्रजा श्रीमान के चरण-कमल के दर्शन के लिए टकटकी लगाए बैठी है। और उन्हे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरणस्पर्श से अहल्या तर गई, उसी प्रकार श्रीमान के चम्पारण में पैर रखते ही हम 19 लाख प्रजाओं का उद्धार हो जाएगा।

कहा जाता है कि जब पहली बार मार्च में ही चम्पारण आने की स्वीकृति दी थी तब डाक विभाग की गडबडी से चिट्ठी देर से पहुंची और जब तक राजकुमार शुक्ल कलकत्ता पहुंचे गान्धी वहाँ से निकल चुके थे। शुक्ल जी को खाली हाथ लौटना पडा। शुक्ल जी की डायरी बताती है कि उस बार वे बिना बहुत तैयारी के और लगभग खाली हाथ गए थे- सूरजबल प्रसाद और गया प्रसाद सिन्ह से बारह रुपए उधार लेकर गए थे। पर डाक विभाग की गडबड वाली बात सही नहीं लगती क्योंकि अगली बार जब वे गए तो उनको समय पर चिट्ठी मिली, वे सबसे मिलते और कार्यक्रम तय करने के साथ इतने पैसों के साथ निकले कि बीच में मुजफ्फरपुर में गया बाबू के पास 175 रुपए जमा कराते गए। ज्यादा पैसा ले जाना उन्हे बेकार लगा। पर इस बार की सूचना का यह पक्ष बहुत बाद में सामने आया कि पहली चिट्ठी देर होने पर राजकुमार शुक्ल ने किसी के मार्फत अर्थात केयर आफ पत्र मंगाया। उन्होने इस बार गान्धी को केयर आफ भगवान प्रसाद महावीर प्रसाद रौनियार, पुरानी गुडडी, बेतिया शहर का पता दिया था। गान्धी ने पहला पत्र जब शुक्ल जी के मुरली भरहवा गांव के पते पर दिया था तो उनको सचमुच के गांव क्या होते हैं और वहाँ की डाक व्यवस्था कैसे चलती है इसका अन्दाजा ही नहीं था।

यह आम तौर पर माना जाता है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हे पहली बार महात्मा कहा। पर आदर देने के नाम पर शायद सबसे पहले राजकुमार शुक्ल ने इसे उच्चारित किया। उन्होने गान्धी को जो पहली चिट्ठी लिखी उसमें भी उन्हे महात्मा शब्द से ही सम्बोधित किया गया था। उस समय गान्धी कर्मवीर गान्धी कहे जाते थे और ग्रामीण लोग गान्ही महात्मा की जय के नारे लगाते थे। जब गान्धी के मुजफ्फरपुर पहुंचने वाली रात स्टेशन गए उनको लेने गए बच्चों को पूरी ट्रेन छान मारने के बाद भी अच्छी डील-डौल और रुआब का व्यक्ति उतरा हुआ नहीं दिखा तो वे निराश हुए। नारियल तोडने

के चक्कर में पेड पर चढकर जांघ छिलवा चुके कृपलानी ज्यादा भाग-दौड नहीं कर रहे थे और अकेले उन्होने ही गान्धी को देखा था। गान्धी और राजकुमार शुक्ल भी गाडी से उतरकर एक किनारे खडे कृपलानी जी का इंतजार कर रहे थे। उनके हाथों में अपने-अपने सामान थे। गान्धी ने भी गुजराती किसानों वाली पोशाक पहनी थी और शुक्लजी तो धोती-मिरजई वाले थे ही। सो बच्चों को उन पर शक नहीं हुआ था। पर जब राजकुमार शुक्ल ने कुछ लडकों को बेचैनी से इधर-उधर जाते देखा तो खुद ही पूछा कि किसे ढूंढ रहे हो। फिर गान्धी की बात जानकर उन्होने बगल में खडे व्यक्ति के लिए कहा-यही तो वह महात्मा हैँ। पहली बार किसी ने गान्धी को तभी महात्मा कहा था। वैसे बिहार में किसी श्रद्धेय को महात्मा कहने का चलन आज भी है और तब भी था।

जितने दिन महात्मा गान्धी चम्पारण रहे, शुक्ल जी उनके साथ साए की तरह चिपके रहे। और गान्धी को जिस बात की जरूरत हुई उन्होने उसे पूरा किया। गान्धी ने जब ज्यादा समय बेतिया रहना शुरु किया तो शुक्लजी भी बेतिया ही रहने लगे। बल्कि जब वे कलकत्ता गए थे गान्धी को लेने तो निलहों के डर से अपने परिवार को किराए के मकान में बेतिया ही शिफ्ट करा दिया था। गवाही के आने वाले किसानोँको सम्भालना, उनका क्रम तय करना, उनकी मदद करना उनका दिन भर का काम हो गया। चम्पारण आयोग की सुनवाई के दौरान जिले के किसानों के प्रतिनिधि के तौर पर जिन तान किसानों की गवाही हुई उसमें राजकुमार शुक्ल भी एक थे। गान्धी यहाँ आने के बाद जिन घरों में सबसे पहले गए उनमें राजकुमार शुक्ल का घर भी था। बल्कि कस्तूरबा भी उनके घर पर रुकीँ। यह माना जाता है कि चम्पारण के लोगों में व्याप्त निरक्षता को अच्छी तरह जानते हुए शुक्ल जी ने ही गान्धी से आग्रह किया था कि वे दक्षिण अफ्रीका की तरह यहाँ भी स्कूल खोलकर लोगों को ज्ञान देने की शुरुआत करेँ। जब गान्धी इसके लिए तैयार हुए तो भितिहरवा की जमीन दान दिलाने और स्कूल भवन बनाने के लिए सामग्री जुटाने में उनकी अग्रणी भूमिका रही।

राजकुमार शुक्ल गान्धी जी के अहमदाबाद चले जाने के बाद भी कांग्रेस के गठन और असहयोग आन्दोलन में बढ-चढकर हिस्सा लिया। वे पदाधिकारी भी बनाए गए पर खुद को कार्यकर्त्ता ही मानते रहे। असल में शेख गुलाब की 1920 में हुई मौत के बाद वे काफी उदासीन रहने लगे थे। उनकी तबीयत भी खराब रहने लगी। इसी अवस्था में वे एक बार साबरमती भी पहुंचे तो महात्मा गान्धी और कस्तूरबा उनको देखकर काफी दुखी हुए। कसूरबा तो उनकी हालत देखकर रोने लगीं और महात्मा जी भी उनके इस सवाल का जबाब नहीं दे सके कि क्या मेरे जीवित रहते देश आजाद हो जाएगा। वहाँ से लौटने के बाद वे ज्यादा दिन जीवित नहीं रहे और 20 मई 1929 को उनकी मृत्यु हो गई।

राजकुमार शुक्ल की असमय हुई मौत से जुडा एक पक्ष तो क्रांतिकारिता के हिसाब से आज भी बहुत आगे का लगता है। उनकी चिता को 1929 में ही उनकी छोटी बेटी देवपति ने मुखाग्नि दी थी क्योंकि उनको कोई बेटा नहीं था। ऐसा आज कई बार सुनने को मिलता है पर आज से लगभग नब्बे साल पहले ऐसा होना बहुत बडी चीज थी और वह भी ब्राह्मण समाज मेँ। पर उल्लेखनीय है कि दसेक साल में ही गान्धी का प्रताप ऐसा फैल गया कि न सिर्फ यह फैसला हुआ बल्कि बाकी पूरे समाज ने इस काम की तारीफ की और विरोध की जगह समर्थन दिया। उनका अंतिम संस्कार तो तकलीफ के साथ हुआ पर उनके श्राद्ध में काफी लोग और बडे-बडे लोग शामिल हुए। शुक्ल जी भट्ट ब्राह्मण समाज से आते थे और खानपान में पूरे पारम्परिक थे। पर गान्धी ने उन्हें पूरी तरह बदल दिया। पर यह बदलाव इतना होगा और पूरे जिले के लोग एक लडकी द्वारा मुखाग्नि दिये जाने की बात मान लेंगे यह हैरान करने वाली चीज है।

उनकी मौत और श्राद्ध से जुडा एक और रोचक मामला है। जिस निलहे ए।सी।एम्मन से उनकी शुरुआती टक्कर हुई थी उसे बहुत तेज और क्रूर माना जाता था। उसकी क्रूरता और चालाकी के किस्से इलाके के हर किसान को मालूम थे तो निलहों में भी उसे अगुआ माना जाता था। राजकुमार शुक्ल के दो गांवों में एक उसके इलाके में था और वे खुद उसकी ज्यादतियों का शिकार हुए थे। माना जाता है कि बेतिया राज की नौकरी और खेती-बारी छोडकर शुक्लजी ने अगर चाणक्य की तरह निलहा राज समाप्त करने की प्रतिज्ञा की तो उसमें एम्मन के हाथों हुये अपमान का भी योगदान था। पर यही एम्मन उनकी मौत पर शायद सबसे ज्यादा दुखी हुआ। उसने शुक्लजी की मौत की खबर सुनी तो उसे उनकी बदहाल आर्थिक स्थिति याद आई। उसने तुरंत अपने एक गुमास्ता को तीन सौ रुपए देकर उनके घर रवाना किया। हक्का-बक्का गुमास्ता बोला साहब वे तो जीवन भर आपको बर्बाद करने की लडाई लडते रहे। एम्मन ने कहा, तुम

उस आदमी को नहीं समझ सकते कि वह क्या था। तुम चुपचाप जाकर पैसे दे आओ। शुक्ल जी के श्राद्ध के अवसर पर चम्पारण आन्दोलन के प्रमुख लोग- राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा, ब्रजकिशोर प्रसाद जैसों के साथ एम्मन भी आए। जब राजेन्द्र बाबू ने उनसे पूछा कि अब तो आपको चैन हो गया होगा कि आपका दुश्मन खत्म हो गया तो डबडबाई आंखों से एम्मन ने कहा, वह मेरा दुश्मन नहीं था। मैं अपना काम करता रहा, अपने फायदे के लिए लगा रहा, वह अपने अधिकारों की लडाई लडा। मेरा तो मानना है कि वही चम्पारण का अकेला मर्द था। उसने मुझसे 25 साल लडाई लडी। अब वह चला गया और आप देख लीजिएगा कि अब मैं भी ज्यादा दिन नहीं चल पाउंगा। श्राद्ध के अगले दिन उसने राजकुमार शुक्ल के बडे दामाद सरयू राय को बुलाया और एसपी के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी दी जिससे उन्हे पुलिस में जमदार पद पर नौकरी हो गई। शुक्ल जी की मौत 29 मई 1929 को हुई थी। तीन महीने बाद एम्मन भी चल बसा।

कुछ दस्तावेज

1. चम्पारण के किसानों का न्यौता गान्धी के नाम

बेतिया

ता027-2-1917

मान्यवर महात्मा,

किस्सा सुनते हो रोज औरों के, आज मेरी भी दास्तान सुनो! आपने उस अनहोनी को प्रत्यक्ष कर दिखाया, जिसे टालस्टाय जैसे महात्मा केवल विचार करते थे। इसी आशा और विश्वास के वशीभूत होकर आपके निकट अपनी रामकहानी सुनाने के लिए तैयार हैं। हमारी दुखभरी कथा उस दक्षिण अफ्रीका के अत्याचार से- जो आप और आपके अनुयायी और सत्याग्रही बहनों और भाइयों के साथ हुआ- कहीं अधिक है। हम अपना वह दुख-जो हमारी 19 लाख आत्माओं के हृदय पर बीत रहा है-सुनाकर आपके कोमल हृदय को दुखित करना उचित नहीं समझते। बस, केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप स्वयँ आकर अपनी आंखों से देख लीजिए, तब आपको अच्छी तरह विश्वास हो जाएगा कि भारतवर्ष के एक कोने में वहाँ की प्रजा-जिसको ब्रिटिश राज की सुशीतल छाया में रहने का अभिमान प्राप्त है-किस प्रकार के कष्ट सहकर पशुवत जीवन व्यतीत कर रही है। हम और अधिक न लिखकर आपका ध्यान उस प्रतिज्ञा की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जो लखनऊ कांग्रेस के समय और फिर वहाँ से लौटते समय कानपुर में आपने की थी, अर्थात, मैं मार्च-अप्रैल महीने में चम्पारण आऊंगा। बस, अब समय आ गया है। श्रीमान, अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करें। चम्पारण की 19 लाख दुखी दुखी प्रजा श्रीमान के चरण-कमल के दर्शन के लिए टकटकी लगाए बैठी है। और उन्हे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरणस्पर्श से अहल्या तर गई, उसी प्रकार श्रीमान के चम्पारण में पैर रखते ही हम 19 लाख प्रजाओं का उद्धार हो जाएगा।

श्रीमान का दर्शनाभिलाषी

राजकुमार शुक्ल

1. राजकुमार शुक्ल और पहले पटना प्रवास के बारे में गान्धी का पत्र

बांकीपुर, चैत्र बदी 3, संवत 1973,

मंगलवार (अप्रैल 10, 1917)

चि0 मगनलाल, वहाँ से दो पत्र एक ही दिन मिले। एक का वजन ज्यादा था इसलिये उसका जुर्माना देना पडा। चि। नारण दास के हिसाब का चिट्ठा वापस भेज रहा हूँ। इसे देखकर तुम जान जाओगे कि जमा खाते की रकम ठीक है या नहीं। यह स्पष्ट है कि नारण दास के नामे डाली हुई सब रकमें उसके खाते जमा करके पोलक के नामे टीपनी है। प्रभुदास कलकत्ते में रह गया है। उसने बताया कि वहाँ उसका मन लग गया है। यह ठीक ही हुआ कि मैं उसे यहाँ नहीं लाया। जो व्यक्ति मुझे यहाँ लाया है, कुछ नहीं जानता। उसने मुझे एक अजनबी जगह में ला पटका है। घर का मालिक कहीं गया हुआ है और नौकर ऐसा समझते हैं कि अवश्य ही हम दोनों भिखारी होंगे। वे हमें घर के पाखाने का उपयोग भी नहीं करने देते। खाने-पीने की तो बात ही क्या? मैं सोच-समझकर अपनी जरूरत की चीजें साथ रखता हूँ, इसलिये बेफिक्र रह सका हूँ। मैंने अपमान के अभुत घूंट पिये हैं, इसलिये यहाँ की अटपटी स्थिति से कोई दुख नहीं होता। यदि यही स्थिति रही तो चम्पारण जाना नहीं हो सकेगा। मार्गदर्शक कोई मदद कर सकेगा ऐसा दिखाई नहीं देता। और मैं स्वयँ अपना मार्ग खोज सकूँ ऐसी स्थिति नहीं है। इस दशा में मैं तुम्हे अपना पता नहीं दे सकता। यदि मैं किसी को वहाँ से मदद के लिये ले आया होता तो वह भी मुझ पर एक भार ही होता। अपना बोझा उठाने के अलावा मुझे उसका भी बोझा उठाना पडता। मैं सिर्फ अपनी अनिश्चित स्थिति की बात भर बता रहा हूँ; तुम्हे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं तो एकांत का

आनन्द उठा ही रहा हूँ। घर ठीक है। नहाने-धोने की सुविधा है; इसलिये शरीर की जरूरत पूरी हो रही है। आत्मा का विकास तो हो ही रहा है।

बापू के आशीर्वाद

(यह पत्र मूल रूप से गुजराती में लिखा गया है। हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण गान्धी वांगमय,13 से लिया गया है)

1. गान्धी का पत्र कृपलानी को

मोतिहारी, अप्रैल 17,1917.

प्रिय मित्र, तुम्हारा प्रेम तुम्हारी आंखों, तुम्हारी भाव-भंगिमा और व्यवहार से झलक रहा था। ईश्वर से प्रार्थना है कि मैं तुम्हारे इस गहरे प्रेम के लायक बन सकूँ। इसमें सन्देह नहीं है कि तुम मदद करना चाहते हो। तुम अपनी इच्छा के अनुसार कोई एक चीज चुन लो। अहमदाबाद चले जाओं और वहाँ प्रयोगात्मक विद्यालयों में काम करने लगो या यहाँ आ जाओ और जेल जाने का खतरा उठाकर काम में जुट जाओ। परंतु यह सब उसी दशा में जब मैं जेल भेज दिया जाऊँ। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे इसी प्रांत में होने के कारण मैं तुम्हारा कार्यक्रम तय करूँ तो मैं कहूंगा कि तुम्हारा कर्तव्य यही है कि जब तक रैयत इंसान की तरह जीने के लिये स्वतंत्र न हो जाए तब तक यहाँ से न हटो। मेरे लिये तो चम्पारण मेरा घर ही हो गया है। जो पूछताछ प्रतिदिन की जा रही है उससे मेरी यह धारणा दृढ होती जा रही है कि कई बातों में यहाँ की स्थिति फिजी से भी बदतर है।

मेरे द्वारा द्वारा अदालत का अपमान करने का सम्मन मुझे अभी तक नहीं मिला है। हृदय से तुम्हारा,

मो.क. गान्धी

प्रोफेसर मलकानी को मुझे अभी आंकडे देने हैं।

मो.क.गान्धी

1. कृपलानी की गिरफ्तारी पर काका साहब को पत्र

मोतिहारी, जनवरी 24, 1918

आरोप सच भी हो सकता है और झूठ भी। अगर सच हो तो अपराधी को प्रायश्चित्त स्वरूप जेल जाना चाहिये; यदि व्यक्ति निरपराध हो (फिर भी उसे सजा दी गई हो तो) उसे चाहिये कि वह न्यायाधीश को शिक्षा देने के विचार से जेल जाए। यदि सभी निर्दोष व्यक्ति अपने को निर्दोष घोषित करते हुये जेल जाने लगें तो हो सकता है कि किसी दिन कोई निर्दोष व्यक्ति सजा ही न पाए। इतना तो हुआ साधारण दृष्टि से विवेचन। प्रोफेसर के मामले में बहुत सी विशेषताएँ हैं। उन पर मामला घोडे को तेजी से हांकने के कारण नहीं चलाया गया था। सरकार को यह तो एक बहाना मिल गया था। इस मामले को चलाने का हेतु यही था कि जैसे भी हो मुझे और मेरी आड में इस आन्दोलन को अप्रिय बनाया जाए। मेरे विरुद्ध न सही मेरे किसी सहयोगी के विरुद्ध भी कुछ किया जा सके, तो मेरे प्रतिपक्षी खुश होंगे, ऐसी कुछ मान्यता इसके पीछे थी। ऐसे समय प्रोफेसर का जेल जाना और अपना स्वरूप दिखाना जरूरी था। फिर यहाँ के लोग जेल जाने से बहुत डरते हैं। उनका भय निकालने के लिये यह एक सुन्दर अवसर था। इसे छोडा नहीं जा सकता था। खुद प्रोफेसर के लिये भी यह अनायास प्राप्त अनुभव छोड देना ऐसा ही होता जैसा लक्ष्मी के तिलक लगाने के लिये आने पर कोई मुन्ह छुपा ले। स्वयँ कष्ट भोगना और अन्याय का विरोध करना ही सत्याग्रह है। न्यायाधीश का निर्णय खालिस अन्याय था। जेल-यात्रा का कष्ट स्वीकार करके प्रोफेस्र ने सत्याग्रह किया। अपील करना सत्याग्रह के क्षेत्र में ही नहीं आता। शुद्ध सत्याग्रह में सफाई की नहीं होती। हम जिस सत्याग्रह को देख रहे हैं, वह शुद्ध नहीं मिश्रित सत्याग्रह है। यह मिश्रण हमारी कमजोरी का माप और लक्षण है। जब शुद्ध सत्याग्रह किया जाएगा तब दुनिया उसका आश्चर्यजनक प्रभाव देखेगी, यह मेरा दृढ विश्वास है। इसलिये सत्याग्रह की दृष्टि से अपील करनी ही नहीं थी; किंतु अपील नहीं की गई इसमें सत्याग्रह का शुद्ध रूप से पालन करने की इच्छा गौड थी। मेरे खयाल से मामला इतना कमजोर था कि हमने अपील वगैरह करके उसे बडा रूप नहीं दिया और इस प्रकार हम न्यायाधीश का पक्षपात और अज्ञान दोनों आसानी से दिखा सके। फिर कोई वकील यह आश्वासन नहीं दे सका कि अपील करेंगे तो उसमें हम जीतेंगे ही। वकीलों से मैंने कह दिया था कि उनकी इच्छा हो तो वे अपील करें।, किंतु हारकर आएँ तो मैं दोष जरूर दूंगा। इस मुकदमे में अपील नहीं की जा सकती थी, नजरसानी ही कराई जा सकती थी। नजरसानी में बडी अदालत भी तथ्यों पर विचार नहीं करती, सिर्फ कानूनी गलती ही सुधारती है। इस मामले में बचाव की कानूनी गुंजाइश नहीं थी। तुम देखोगे कि इसमें सत्याग्रह और संसार जिसे व्यावहारिकता कहता है, उसकी भी रक्षा हुई है।

कुछ दिलचस्प कहानियाँ

1. एक दफ्तर बने न्यारा

जब चम्पारण आन्दोलन एक मुकाम पर पहुंचता लगा और निलहों के खिलाफ की लडाई के बाद शिक्षा

और स्वास्थ्य जैसे रचनात्मक कामों की तरफ मुडा तब गान्धी ने एक दिन शाम की चर्चा में जिले में एक स्थायी ही नहीं बढंतु दफ्तर की अपनी इच्छा जाहिर की जैसेकि कैथेड्रिल होते हैं। उन्होने महान अल्फ्रेड द्वारा बनवाए वेस्टमिनिस्टर एबी जैसे दफ्तर का अपना सपना बताया जिसमें अभी भी नए खंड और विभाग बनते जा रहे हैं। उनका मानना था कि दफ्तर की जमीन और भवन में काम बढते जाने के साथ विस्तार का काम भी होता रहना चाहिये और हमें ऐसा दफ्तर बनाना चाहिये जिसमें निरंतर विस्तार की गुंजाइश हो। चर्चा शाम की अनौपचारिक बैठकी में हो रही थी जिसमें सभी सहयोगी थे। उनके निजी सचिव महादेव देसाई भी शामिल थे। बापू ने कहा कि ब्रजकिशोर बाबू या राजेन्द्र प्रसाद जी को यहाँ रहने और गोरख (प्रसाद) बाबू को एक महीने में जमीन जुटाने का प्रण करना चाहिये। महादेव भाई ने कहा कि बापू आप भी क्या बात करते हैं, अभी तो हमारे पास ढंग का भाडे का दफ्तर और उसका किराया जुटाने की स्थिति नहीं है और आप ऐसे दफ्तर का सपना देख रहे हैं। बापू ने कहा मेरे तो सब काम ऐसे ही होते हैं। बात इतने पर ही रुक गई। अगले दिन गान्धी को बेतिया जाना था।

और जैसे ही गान्धी बेतिया यात्रा से लौटे गोरख बाबू, जिनके यहाँ गान्धी सबसे पहले ठहरे थे, उनके पास नींव रखने का कार्यक्रम लेकर आए। एक स्थानीय धनवान देवीलाल साहु ने मोतिहारी से लगे और बेतिया-मोतिहारी मुख्य सडक पर ही अपनी कई एकड जमीन का प्लाट इस काम के लिए दे दिया था। गान्धीजी तुरंत ट्रस्ट डीड बनवाने और उसकी शर्तें तय कराने में लग गए। ट्रस्टियों के नाम और मकान बनाने की अनुमति के लिए पत्र लिखे। इसके बाद उन्होने अपने सभी साथियों से कहा कि हर ट्रस्टी को वहाँ डेरा डालकर बैठ जाना चाहिये और कोई धान्धली न हो इसका खयाल रखना चाहिये। मकान बनाने का काम अब रुकना नहीं चाहिये। कोई एक मकान गिराए तो दूसरा बनाया जाना चाहिये। फिर गिराए तो फिर बनाना चाहिये। यह नौबत नहीं आई और तब के शहर से कुछ ही दूरी पर बना यह कांग्रेस आश्रम आज भी जिस स्थिति में है वैसा दफ्तर कांग्रेस या किसी भी दल का शायद ही किसी जिले में हो। जाहिर तौर पर अब यहाँ सक्रियता घटी है और शहर के अन्दर आ जाने से कब्जा होने लगा है, पर जिले से जाते-जाते गान्धी की यह इच्छा भी चम्पारण ने पूरी कर दी।

2. जब गान्धी ने कृपलानी को जेल भेजा

जिस समय गान्धी ने चम्पारण सत्याग्रह किया था तभी नहीं उसके बहुत बाद तक यहाँ के खाते-पीते घरों के ठीकठाक हैसियत वाले लोगों की निजी सवारी के लिये घोडे का प्रचलन आम था। तराई का क्षेत्र और अनगिनत छोटी-छोटी नदियोँ, जो हिमालय से निकलती हैं, के चलते यहाँ पक्की सडक या रेल का यातायात कम था। घोडा आसानी से कच्ची सडक ही नहीं ऊंच नीच भी सम्भाल लेता था। गान्धी के आने के कुछ ही समय पहले यहाँ पहली बार रेल चली थी। तब मुजफ्फरपुर के ग्रियर भुमिहार कालेज, जिसे अब लंगट सिन्ह कालेज कहा जाता है, में अध्यापन कर रहे कृपलानी भी गान्धी के साथ ही चम्पारण आए थे। भोजपुरी न जानने के कारण उनका मुख्य काम रसोई में कस्तूरबा को मदद करना, जिसे वे कस्तूरबा का आलू छीलना कहते थे, और गान्धी की पहरेदारी करना था। उन्हे भी घुडसवारी का शौक था।

किसी दिन उन्होने किसी स्थानीय साथी का घोडा लेकर अपना शौक पूरा करना चाहा। उन्हे तेज सवारी अच्छे लगती थी। सो उन्होने घोडे को ऐड लगाए पर वह भडक गया। उसने सवार को ही पटक दिया। दादा कृपलानी के घुतने छिल गए और चोट लगी। घोडा जब भडककर मुडा तो एक बुजुर्ग महिला भी डर कर भागी और गिर गई। लोगों ने दोनों को सम्भाला और कृपलानी जी अपना यह कार्यक्रम त्यागा। पर जिस समय यह घटना हुई उसी समय स्थानीय पुलिस प्रमुख भी आसपास थे। उन्होने कृपलानी पर शांति भंग करने का मुकदमा कर दिया जिसमें खुद चश्मदीद गवाह बन गए। नोटिस मिलने पर सब हैरान थे पर गान्धी ने किसी वकील को उनकी पैरवी नहीं करने दी। कृपलानी जी को चालीस रुपए जुर्माना या पन्द्रह दिन जेल की सजा हो गई।

तब आन्दोलन मेम शामिल बाकी वकील अपील करने की बात करने लगे। गान्धी ने फिर उन्हे रोक दिया। उन्होने कहा कि अभी चम्पारण के लोग जेल जाने से काफी डरते हैं। कृपलानी जी जेल जाएंगे तो लोगों के मन में बैठा जेल का खौफ कम होगा। और इस प्रकार कृपलानी जी की पहली जेल यात्रा गान्धी ने ही कराई।

3. विनोबा ने तो हद कर दी

जब जनवरी 1916 में विनोबा का स्वास्थ्य बिगडा तो उन्होंने गान्धी जी की सहमति से अहमदाबाद आश्रम छोड् दिया था और दो-तीन महीने के लिए अपने मूल स्थान वाई चले गए। गान्धी चम्पारण आए तो यहाँ की

व्यस्तता में विनोबा का नियमित हाल नहीं ले पाए थे। विनोबा पत्र लिखने में आलसी थे। अचानक दस फरवरी 1918 को उन्होने मोतिहारी में गान्धी को पत्र लिखा जिसमें माफी मांगने के साथ अपने काम और साल भर के रुटीन की विस्तृत चर्चा की।

उन्होंने लिखा कि वाई के आजन्म ब्रह्मचारी नारायण शास्त्री की देखरेख में मैने उपनिषदों, गीता, ब्रह्मसूत्र और शंकरभाष्य, मनुस्मृति, पातंजलि योगसूत्र, न्यायसूत्र, वैशेषिक सूत्र और याज्ञवल्क्य स्मृति का अध्ययन किया है। अब मुझे ज्यादा पढने का मोह है ही नहीं। ब्रह्मचर्य का व्रत मैने दस साल की उम्र में ही लिया था जो अब और पक्का हुआ है। स्वास्थ्य सुधारने के लिये उन्होने रोज दस-बारह मील पैदल चलना, छह से आठ सेर अनाज पीसना (लोगों का अनाज पीसने से जो पिसाई मिलती थी उसे वे स्थानीय वाचनालय में दे देते थे), और तीन सौ सूर्य नमस्कार करते थे। पहले छह महीने नमक खाया फिर जीवन भर के लिए नमक-मसाला छोडने का निश्चय कर लिया। दूध ले रहे थे पर उसे भी छोडना चाहते थे। इन सबके साथ वे गीता का वर्ग चलाते थे। ज्ञानेश्वरी और उपनिषदों का भी वर्ग चलाते थे। उनमें अपेक्षाकृत कम लोग आते थे। खुद हिन्दी अच्छी तरह न जानते हुए भी हिन्दी का प्रचार किया। दो बच्चों को अंग्रेजी सिखाई। लगभग 400 मील की यात्रा करके कई महत्वपूर्ण जगह देखे और गीता पर पचास से ज्यादा प्रवचन किये। 15 विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थी मंडल बनाया, वाचनालय बनाया, उन बच्चों से भी चक्की पिसवाकर वाचनालय के लिए धन जुटाया।

विनोबा ने तभी लकडी की थाली, कटोरा, आश्रम का लोटा, धोती, कम्बल और पुस्तकेँ भर की 'सम्पत्ति' रखने का व्रत किया। अस्वाद का निश्चय के साथ विदेशी सामान न उपयोग करने, सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का निश्चय किया था। इस पत्र में दो-चार दिनों में गांव छोडने की सूचना देन के साथ 'पितातुल्य' गान्धी से और बदलाव बताने का आग्रह किया था। पत्र पढकर गान्धी भाव-विह्वल हो उठे और कहा, 'गोरख ने मछन्दर को हरा दिया।' विनोबा ने तो हद कर दी। दूसरे दिन उन्होने पत्र लिखा, ' मैँ तुम्हारी परीक्षा करने में असमर्थ हूँ। तुम मुझे जो पद (पिता का) दे रहे हो उसे मैँ स्वीकार करता हूँ।'

4. दरी के ट्रस्टी

जब गान्धी चम्पारण में निलहों पर जीत हासिल करने की स्थिति बानाकर रचनात्मक कामों की तरफ मुडे तभी अहमदाबाद के मिल मजदूरों की तरफ से उन्हे बार-बार बुलावा आने लगा था। उनकी नेता और एक बडे व्यावसायिक घराने से सम्बन्ध रखने वाली अनुसूया बाई के पत्रों के साथ खेडा के किसानों का बुलावा भी आने लगा जहाँ सूखे और अकाल के बावजूद शासन लगान वसूली तक रोकने को तैयार न था। सो गान्धी चम्पारण को अलविदा कहकर वहाँ के लिये रवाना हो गए। मोतिहारी से पटना जाने पर उन्हे दिन भर लोगों से मिलने-जुलने और विदा लेने से ही फुरसत नहीं मिली। शाम को जब गान्धी गाडी में चढे तो उनके चेहरे से थकान साफ दिख रही थी। गाडी के एक अन्य यात्री ने उन्हे पहचान लिया और उनको पंखा झलने लगा। गान्धी के सचिव महादेव भाई का अनुमान था कि वह सादे कपडों में कोई पुलिस वाला था। जल्दी ही उन्हे नीन्द आ गई। सोए गान्धी का पैर उसकी दरी पर था। उसे लगा कि अगर उसने दरी समेटी तो गान्धी की नीन्द में खलल होगा। उसने उन्हे जगाने से बेहतर दरी को छोद देना ही समझा और गाडी से उतर गया। दूसरी सुबह जब गान्धी जगे और दरी देखकर इस प्रसंग की चर्चा महादेव भाई से करने लगे तो एक मारवाडी वहीं बैठे-बैठे यह किस्सा सुन रहा था। मुगलसराय स्टेशन पर उतरने से पहले उसने गान्धी जी से कहा, 'यह दरी मुझे दे दीजिये ना। आपको इसका क्या उपयोग है?' पर गान्धी से कोई सामान वापस पाना कहाँ आसान था। गान्धी मुस्कराए और कहा, मैँ तो ट्रस्टी हूँ। इसे तो इसके मालिक को ही भेजना है।'

5. गोरी चमडी का डर निकालना

जब गान्धी चम्पारण आए तब भी किसानों की तरफ से कुछ मुकदमे निलहों के खिलाफ और उनकी तरफ से किसानों के खिलाफ चल रहे थे। तब बिहार में सामाजिक कामकाज और कानूनी हलकों में सबसे बडी हैसियत रखने वालों में एक ब्रजकिशोर प्रसाद खुद ही ऐसा मुकदमा लड रहे थे जो शुरु से गान्धी के सबसे प्रमुख सहयोगी बने। हालांकि उन्हे वकालत के शानदार कपडों में ही लखनऊ अधिवेशन में देखने और मिलने के बावजूद शुरु में गान्धी की उनके प्रति धारणा अच्छी नहीं बनी थी। पर जब चम्पारण जाने के क्रम में गान्धी मुजफ्फरपुर गए और दो दिन रुके तो कमिश्नर और निलहा संघ के लोगों से मिलने के साथ ही अपने भावी सहयोगियों के साथ उन्होने रणनीति पर चर्चा की और यह सबसे पहले तय हो गया कि कोर्ट-कचहरी के भरोसे चम्पारण के किसानों का दुख दर्द खत्म नहीं हो सकता। पहला काम तो लोगों के मन से

शासन और गोरी चमडी का डर निकालना होगा।

और इस बात या रणनीति का सबसे प्रभावी रूप तब देखने को मिला जब गान्धी के सहयोगियों मे नील के किसानों से उनकी व्यथा सुनने और रिकार्ड करने का काम शुरु किया जिसमें करीब पचीस हजार किसानों के लिखित बयान दर्ज किये गए थे। वैसे तो गान्धी के आने के पहले से खुफिया पुलिस सक्रिय हो गई थी और हर जगह की तरह चम्पारण के लोग भी उनसे डरते थे। पर जब गवाहियों के समय किसानों और गान्धी के सहयोगियों के आसपास खुफिया विभाग के लोग डोलने लगे तो सब तनाव में रहने लगे। गान्धी के प्रमुख सहयोगी धरणीधर प्रसाद ने उनकी मौजूदगी पर आपत्ति की।

गान्धी से शिकायत हुई तो उन्होने समाधान दिया कि आप आम लोगों और उनमें फर्क मत कीजिये। कल से जब वे लोग नजर आएँ तो उन्हे अपने पास बैठाइये, पानी पिलाइये और आदर का व्यवहार कीजिये। उन्हे अपना काम करने दीजिये। इससे उन पर जो प्रभाव होगा वह अपनी जगह है लेकिन लोगों के मन से पुलिस और प्रशासन का खौफ कम होगा। और यही किया गया। और कई जानकारों का मानना है कि आम लोगों के मन से खौफ हटाने में इसी एक कदम ने सबसे बडा काम किया क्योंकि रोज हजारों लोग जुटते थे और खुफिया विभाग की व्यवहारिक ताकत(सिर्फ घटनाक्रम की रिपोर्टिंग करने का) का प्रत्यक्ष अनुभव करके गांव-गांव बात फैलाते थे।

6. चार्ली एंड्रूज को चम्पारण से निकाला

दीनबन्धु के नाम से विख्यात हुए चार्ली एंड्रूज उन गिनती के गोरे और अंगरेज लोगों में एक थे जो आजीवन गान्धी के सहयोगी बने और जिन्होने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में किसी भी भारतीय से कम योगदान नहीं किया। वे चम्पारण आन्दोलन के बहुत पहले से गान्धी से जुड गए थे और उनके हर काम में भरोसेमन्द साथी बने थे। सो जब गान्धी चम्पारण आए और सत्याग्रह का दक्षिण अफ्रीकी प्रयोग पहली बार भारत में दोहराने को तत्पर हुए तो वे भी खबर सुनते ही भागे-भागे चम्पारण पहुंचे। उन्हे हफ्ता-दस दिन बाद मारीशस जाना था और उनके पेपर तैयार थे, टिकट हो चुका था।

वे जिस दिन मोतिहारी पहुंचे उस दिन तक गान्धी कोर्ट में पेश होकर अपनी सफाई दे चुके थे और पूरे ब्रिटिश हुकुमत को थर्राने वाली यह घोषणा भी कर चुके थे कि वे स्वेच्छा से शासकीय आदेश को मानने से इंकार करते है। और अदालत जो भी सजा सुनाएगी वे उसे मानने को तैयार हैं। अब तक पुलिस के डंडे से डर जाने वालों की तरफ से इस तरह के व्यवहार की शासन को अपेक्षा न थी और अदालत ने गान्धी को मोतिहारी में ही रुकने का आदेश देने के साथ ही बाद में फैसला देने की घोषणा की थी। आते ही एंड्रूज गान्धी, उनके सहयोगियों और फिर अंगरेज अधिकारियों तथा निलहों से मिले। अधिकारियों ने उनसे ज्यादा खुलकर बात की। और राजेन्द्र बाबू ने लिखा है कि सम्भवतः उन्हे फैसले का इशारा भी कर दिया था। यह बात उन्होने गान्धी के सहयोगियों को भी संकेत में बताया जिससे सभी बहुत राहत महसूस कर रहे थे। सभी गान्धी के बाद जेल जाने का वायदा तो कर चुके थे पर जेल से और अपना सामान्य कामकाज प्रभावित होने से डरते थे। गान्धी और अंगरेज दोनों तरफ सर चार्ली का रुतबा और उनकी सरलता देखकर चम्पारण में जुटे गान्धी के सहयोगी बिहारी बहुत प्रभावित हुए। उनको लगा कि अगर वे चम्पारण में रुक गए तो बाकी सबका काम काफी हल्का हो जाएगा। सर चार्ली भी चम्पारण की स्थिति और गान्धी का फैसाला देखकर इस प्रयोग में भागीदार बनने के इच्छुक लगे, पर उन्हे गिरमिटिया मजदूरों की स्थिति सम्बन्धी अध्ययन के लिए मारीशस जाना भी जरूरी लगता था। सो उन्होने गोरख बाबू की अगुआई वाले स्थानीय सहयोगियों से कहा कि अगर गान्धी जी कहेंगे तो वे मारीशस का प्रोग्राम छोडकर यहीं रुक जाएंगे। जब उनको रोकने का आग्रह करते हुए ये लोग गान्धी से मिले तो गान्धी को उनकी मंशा समझते देर न लगी। उन्होने तुरंत कहा कि आप लोगों को लगता है कि एक गोरी चमडी वाला आपके साथ होगा तो अंगरेज आपसे ज्यादा अच्छी तरह पेश आएंगे। यह असल में गोरी चमडी से आपका डर बताता है। और मारीशस का काम जरूरी है पर आपके इसी डर को खत्म करने के लिए मैं दीनबन्धु एंड्रूज को यहा रुकने नहीं दूंगा। मेरा भी मन उनसे जुडा है और वे रहेंगे तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा पर सार्वजनिक जीवन में कई बार निर्मम भी बनना पडता है। और उन्होने सर चार्ली को तीन-चार दिन बाद ही विदा कर दिया।

7. हल्की अनैतिकता बनाम भारी अनैतिकता

जब चम्पारण आन्दोलन जोर पकडने लगा तो सरकारी नौकरी में लगे अनेक भारतीय और स्थानीय लोगों का जमीर भी डोलने लगा। उन्हे अपनी नौकरी काटने लगी पर सब कुछ छोडकर आन्दोलन के समर्थन में आना भी आसान न था। पर वे किसी तरह आन्दोलनकारियों की

मदद भी करना चाहते थे। बहुत सारे उदाहरण हैण जब उन्होने पहले की तरह खैरख्वाही दिखाते हुए अपने ही लोगों पर जुर्म नहीं किया। वे और भी तरह से लेकिन अपनी पहचान छुपाते हुए मदद करना चाहते थे। ऐसे ही एक अधिकारी ने जब तिनकठिया प्रणाली सम्बन्धी रिपोर्ट सरकार के लिए तैयार की तो उसकी एक प्रति चुपचाप गान्धी के सहयोगी और पास के छपरा जिले के मूल निवासी राजेन्द प्रसाद को दे दी। उसने कहा कि हम तो रोज पेट के लिए गलत काम करते हैँ किसी दिन मन के लिए एकाध अच्छे काम भी कर लेने चाहिये। राजेन्द्र बाबू ने यह खबर गान्धी जी को दी तो उन्होने तुरंत रिपोर्ट वापस करने को कहा। और फिर विस्तार से समझाया कि सत्याग्रह के काम में कोई छोटी या बडी अनैतिकता नहीं होती। अनैतिकता अपनाकर सत्याग्रह नहीं चल सकता। इसका तब जो असर हुआ हो वह अलग है पर राजेन्द्र बाबू पर गहरा असर हुआ। जब उन्हे नागरिक अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में लम्बी सजा हुई और जेल में रहना पडा तो एक दिलचस्प वाकया हुआ। उन्होने तब तक प्रकाशित गान्धी के साहित्य को जमा और वर्गीकृत करके कई खंडों में छपवाने की योजना बनाई (सम्भवतः सम्पूर्ण गान्धी वांगमय की शुरुआती योजना)। जेल में काफी कांग्रेसी थे जो इस काम में सहयोग करने को तत्पर थे। सो काम शुरु हुआ। खूब साहित्य मंगाया गया। अध्ययन, विचार-विमर्श और कई-कई कापियाम तैयार करने का काम शुरु हुआ। जेल अधिकारी भी किताब मंगाने, कोटे से अधिक कागज-कलम-दावात देने में नहीं हिचके। पर जब एक दिन जेल में डीआईजी साहब का दौरा हुआ। जेलर ने राजेन्द्र बाबू से कहा कि वे अपनी किताबें आज भर के लिए छुपाने के लिए दे दें। यह दौरा खत्म होने पर किताबेँ-कागज वापस मिल जाएंगी। राजेन्द्र बाबू ने कारण पूछ तो मालूम हुआ कि हर राजनैतिक कैदी को हर महीने सिर्फ एक ही गैर-राजनैतिक किताब पाने का और कुछ ही पन्ने कागज पाने का हक है। अब राजेन्द्र बाबू दुविधा में पड गए और अंततः उन्होने यह पूरी योजना बन्द कर दी। काफी हद तक हो गया काम यह सोचकर रोक दिया गया कि कभी बाहर रहने पर ही फुरसत मिलने पर किया जाएगा। न यह फुरसत हुई न दोबारा काम हुआ।

8. इतना भारी खाना और नाम जलपान

जब गान्धी चम्पारण आए तो बिहार के प्रमुख वकील और सामाजिक रूप से सचेत लोगों का जत्था भी उनकी मदद के लिए आया। सबकी कमाई एक से बढकर एक और सबका रुतबा एक से बढकर एक। ब्रजकिशोर प्रसाद, मजहरूल हक, सचिदानन्द सिन्हा, हसन इमाम, राजेन्द्र प्रसाद ही नहीं धरणीधर प्रसाद, शम्भु शरण और अनुग्रह नारायण सिन्हा जैसों की कमाई और जीवन शैली को देख सुनकर गान्धी भी हैरान थे। और इनमें से कई उनके साथ चम्पारण में रहने लगे तो उनके नौकर-चाकर भी साथ आए थे। कोई नौकर खाना बनाने के लिए (क्योंकि उस समय छुआछूत और कच्चा-पक्का खाने का बहुत महात्म था), तो कोई देह दबाने के लिए, कोई कपडे धोने-सुखाने-आइरन करने के लिए तो कोई जूते सम्भालने के लिए। अकेले कृपलानी जी थे जो तब तक सत्याग्रही या किफायती जीवन जीने लगे थे। गान्धी का भोजन भी उनके कूकर में ही बनता थी-उबली सब्जी और भात। पहले गान्धी खजूर, मेवा, मूंगफली और शहद का ही भोजन करते थे पर चम्पारण आकर उन्होने सब्जी-चावल लेना भी शुरु किया। पर जल्दी ही उन्होने और साथ ही कृपलानी जी ने भी नमक छोड दिया। तब गान्धी के भोजन पर रोज एक आना खर्च आता था। कृपलानी जी भी इससे ज्यादा खर्च नहीं करते थे।

दूसरी ओर वकील साहबों की अलग-अलग रसोई में सामिष-निरामिष सब चलता था। तब चम्पारण में बकरे का गोश्त एक आना और रोहू मछली दो पैसे सेर मिलती थी, सो दस हजारी फीस वाले वकीलों और उनके अमलों की मौज का अन्दाजा सहज लगाया जा सकता है। गर्मी का मौसम शुरु ही हुआ था सो आम, जामुन, शहतूत, खीरी, फारसा, लीची जैसे फलों की बहार थी। जर्दा और सबुजा आम खास लोकप्रिय हो गए थे और खरीद के अलावा लोग भी लिए आते थे। आम तो गान्धी को भी पसन्द थे पर वे कई बार दक्षिण अफ्रीका के रसीले फलों को भी याद करते थे। बाकी लोग सुबह दही-चिउडा के बाद दिन भर तो काम में लगे होते थे। खाने के मोर्चे पर उनकी असली सक्रियता शाम को होती थी। तब तक गान्धीजी शाम का भोजन करके सैर पर निकलते थे और इन सभी का जलपान होता था। जब तली मछली, बकरे या चिडिया के भुने गोश्त और कई तरह के चोखे/भर्ते के साथ कई अनाजों के भूंजे का जलपान होता था। फिर रात बारह बजे तक भोजन होता था। गान्धी यह सब देखकर हैरान थे और कहा करते थे-ये सब इतना कुछ खाते हैँ और कहते हैँ जलपान कर रहे हैं।

●

सजप का 11वां सम्मेलन संपन्न

जटेश्वर (अलीपुरदुआर)। समाजवादी जन परिषद का 11वां द्विवार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन उत्तर बंगाल के अलीपुरदुआर जिले के जटेश्वर हाईस्कूल में 29 अप्रैल से एक मई 2017 तक आयोजित किया गया।

29 अप्रैल की शाम पांच बजे सम्मेलन का उद्घाटन राष्ट्रीय अध्यक्ष साथी जोषि जैकब द्वारा पार्टी के झंडोत्तोलन और सदस्यों द्वारा राष्ट्रगान के साथ हुआ।

शाम साढे पांच बजे सम्मेलन के सत्र का उद्घाटन पार्टी के वरिष्ठ साथी सच्चिदानंद सिन्हा ने किया। 89 वर्षीय सच्चिदा जी ने कहा कि समाजवादी जन परिषद देश की राजनीति में मूल समस्याओं पर मौलिक ढंग से सोच रखनेवाली पार्टी है। इसकी जरूरत इसलिए भी है कि वर्तमान औद्योगिक सभ्यता की अंधी दौड़ में जब दुनिया आत्मघात की ओर बढ़ रही है, पार्टी इन मुद्दों को ध्यान में रखकर ही विकास की अवधारणा की बात करती है। चंपारण सत्याग्रह के सौ साल पूरे होने के अवसर पर हो रहे पार्टी सम्मेलन में सच्चिदाजी ने गांधी को याद किया और विकास की आधुनिक विनाशकारी अवधारणा के बीच गांधी की दीर्घजीवी विकास की सोच की बात की। उन्होंने कहा कि आज दुनिया के लिए जरूरी है कि वह गांधी के मॉडल पर विचार करे ताकि धरती का संरक्षण हो सके।

उन्होंने दुनिया भर में जुल्मों, विषमताओं के खिलाफ विभिन्न कालखंडों में हुई क्रांतियों का हवाला देते हुए उनकी कमियों को भी उजागर किया। उन्होंने कहा कि रूस, चीन और देशों में हुई क्रांतियों का हश्र और बुरे दौर में हुआ क्योंकि उनकी विकास की अवधारणा वही रही जो पूंजीवाद और साम्राज्यवाद की थी। उन्होंने क्यूबा का उदाहरण देते हुए वहां हुए बदलावों और विकास की सराहना की और कहा कि क्यूबा आज सोचनेवाले समूहों और देशों को राह दिखा सकता है।

सम्मेलन में उद्घाटन सत्र में ही मुख्य अतिथि शिक्षाविद और अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच के प्रमुख नेता अनिल सद्गोपाल ने देश में शिक्षा की दयनीय हालत और उसमें किए जा रहे बाजारवादी बदलावों पर घोर चिंता जताई और कहा कि सजप जैसे दलों को इसके खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व हाथ में लेना चाहिए।

उद्घाटन सत्र के बाद पहले दिन का सम्मेलन रात्रि विश्राम के लिए समाप्त हो गया। अगले दिन सुबह 9 बजे से राज्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इसके बाद संगठन सचिव साथी अफलातून ने राजनीतिक-आर्थिक प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव का समर्थन उपाध्यक्ष साथी कमल कृष्ण बनर्जी ने किया। प्रस्ताव पर चर्चा के बाद इसे संशोधनों के साथ पारित किया गया। दोपहर बाद के सत्र में सामाजिक प्रस्ताव साथी स्मिता ने प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव पर शाम तक चर्चा चली।

30 अप्रैल की शाम को जटेश्वर बाजार में आमसभा का आयोजन किया गया। इसमें देशभर से आए पार्टी के नेताओं ने अपने विचार रखे। रात को भोजन के बाद दूसरे दिन का सम्मेलन पूर्ण हो गया।

तीसरे दिन एक मई को सुबह सामाजिक प्रस्ताव पर बची चर्चा हुई और उचित संशोधनों के साथ इसे पारित किया गया। इसके बाद कार्यक्रम संबंधी प्रस्ताव साथी अतुल कुमार ने प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव को पारित करने के बाद अगले सत्र में चुनाव अधिकारी साथी शिवाजी गायकवाड़ ने पार्टी का सांगठनिक चुनाव संपन्न कराया।

सांगठनिक चुनाव में अगले दो साल के लिए साथी कमल कृष्ण बनर्जी को अध्यक्ष और साथी अफलातून को महामंत्री चुना गया। इसके साथ ही 21 सदस्यीय राष्ट्रीय कार्यकारिणी का भी चुनाव हुआ। दोपहर तीन बजे के बाद नवनिर्वाचित और पुरानी राष्ट्रीय कार्यकारिणी की संयुक्त बैठक हुई, जिसमें निशा शिवुरकर, लिंगराज आजाद और अजय खरे को उपाध्यक्ष, साथी चंद्रभूषण चौधरी को कोषाध्यक्ष, साथी रणजीत राय को संगठन मंत्री, साथी फागराम को सचिव नियुक्त किया गया।

सम्मेलन की सुचारू और सुव्यवस्थित व्यवस्था के लिए बंगाल इकाई को धन्यवाद दिया गया। इसके साथ ही सम्मेलन का समापन नवनिर्वाचित अध्यक्ष और महामंत्री के संबोधनों के साथ संपन्न हो गया।

राजनैतिक प्रस्ताव

2014 में पहली बार अपने बूते केन्द्र में सरकार बना लेने के बाद भारतीय जनता पार्टी ने एक तरफ उत्तर प्रदेश जैसे बडे राज्य में बड़ी चुनावी सफलता हासिल की है वहीं दूसरी ओर राजनीति को पूंजीपतियों के हाथों में बांध देने में सत्ता के शीर्ष में बैठे इस दल के लोगों ने अहम भूमिका अदा की है।विडंबना यह है कि शोषक वर्ग के स्वार्थ की पूर्ति के लिए नाना प्रकार की नीतियां बनाने और कदम उठाने के बावजूद केन्द्र में बैठा यह सत्ताधारी दल राष्ट्रवादी होने का दावा करता है। समाजवादी जन परिषद के लिए दो स्वार्थ सर्वोपरि है-शोषित वर्ग का स्वार्थ तथा देश का स्वार्थ। दल की स्पष्ट मान्यता है कि पूंजीपति वर्ग के स्वार्थ को तवज्जो देने से देश के स्वार्थ का नुकसान ही होता है।

याराना पूंजीवाद और खेती

केन्द्र सरकार की विदेश नीति तक शासक वर्ग से जुड़े पूंजीपतियों के हक में है। प्रधान मंत्री मंगोलिया,बांग्लादेश जैसे हमसे कमजोर देशों में जाते हैं और उन्हें करोड़ों डॉलर का कर्ज देने की घोषणा करते हैं।यह ऋण उन्हीं देशों को दिया जाता है जहां प्रधान मंत्री के करीबी पूंजीपतियों द्वारा बड़ी परियोजना चलाने के लिए समझौता होता है।

देश के बड़े पूंजीपतियों का सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में 11 लाख करोड़ रुपये का बकाया है।इसे चुकता करवाने के लिए सरकार द्वारा कोई कदम नहीं उठाया जा रहा है। इस सन्दर्भ में रिजर्व बैंक के पिछले गवर्नर द्वारा कड़े कदम उठाने की मांग की गयी तो उन्हें सेवा विस्तार नहीं दिया गया।

खाद्यान्न एवं खाद्य तेल के मामले में स्वावलंबन हमारे देश की सबसे बड़ी उपलब्धियों में गिनी जानी चाहिए जिसका श्रेय इस देश के किसानों को जाता है।इस स्वावलंबन को पलटने की दिशा में भी सत्ता के करीबी पूंजीपतियों का प्रत्यक्ष हाथ दिखाई दे रहा है।भारत दुनिया का सबसे बड़ा पाम ऑयल आयात करने वाला देश हो गया है।गौतम अडाणी की खाद्य तेल की 'फॉर्चून' मार्के वाली कम्पनी द्वारा अन्य तेल कम्पनियों को पाम ऑयल मिला हुआ खाद्य तेल बेचने का तरीका बताना आयात बढ़ने का मुख्य कारण रहा है। देश के तमाम बड़े उद्योगपतियों की कम्पनियों द्वारा अफ्रीकी देशों में हजारों एकड़ के फार्मों में खेती कराई जा रही है तथा भारत सरकार इनके उत्पादों के आयात के लिए उन देशों से समझौते कर रही है। अरहर की दाल की कीमत जिन दिनों आसमान छू रही थी तब गौतम अडाणी के गुजरात स्थित निजी बन्दरगाह में अफ्रीका से आयातित सस्ती दाल(40 से 50 रुपए/किलो) इकट्ठा करके रखा गया था तथा कीमत 100 रुपये प्रति किलो होने के बाद उसे निकाला गया था। विदेशों से गेहूं आयात करने पर लगने वाले 25 प्रतिशत आयात शुल्क को पहले 10 फीसदी किया गया और फिर उसे पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है। वित्त मंत्री द्वारा यह घोषित कर दिया गया है कि निजी कम्पनियां यदि ठेके पर खेती करना चाहेंगी तो उन्हें इजाजत दे दी जाएगी।

खेती में बढ़ रही लागत के कारण किसानों की आत्महत्या की दर 26 प्रतिशत बढ़ गयी है। उत्तर प्रदेश की नवनिर्वाचित सरकार ने लघु तथा सीमान्त किसानों के कर्जे माफ कर दिए हैं जो कुछ राहत देने वाला कदम है।इसके साथ ही स्टेट बैंक ऑफ इंडिया तथा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के शीर्षस्थ अधिकारियों ने किसानों की कर्ज माफी के खिलाफ बयान देने शुरु कर दिए हैं। इन बयानों से स्पष्ट होता है कि सरकार देश भर के किसानों के कर्ज माफ करने की मांग पर सकारात्मक नजरिए से विचार नहीं करना चाहती है।

कृषि उपज के समर्थन मूल्य के सन्दर्भ मे स्वामीनाथन समिति की सिफारिश को लागू करने की मांग को सरकार नजरअन्दाज कर रही है।इस समिति द्वारा लागत खर्च में 50 फीसदी जोड़ कर समर्थन मूल्य निर्धारित करने की बात कही गयी थी। यह नहीं भूलना चाहिए 2014 के आम चुनाव के अभियान में नरेन्द्र मोदी ने भी इस समिति की सिफारिशों को लागू करने की बात चुनावी सभाओं में कही थी। सजप सहित देश के किसान आन्दोलन कृषि उपज के मूल्य निर्धारण की बाबत इस समिति की सिफारिश को लागू करने की मांग करते हैं।

बेरोजगारी :

समाजवादी जन परिषद के नेता और अर्थशास्त्री साथी

सुनील ने ग्रामीण इलाके के रोजगार के सन्दर्भ कहा था,'आज भारत के गाँव उद्योगविहीन हो गए हैं और वहाँ खेती-पशुपालन के अलावा कोई धंधा नहीं रह गया है । गाँव और खेती एक दूसरे के पर्याय हो गये हैं । दूसरी ओर गांव और उद्योग परस्पर विरोधी हो गये हैं । जहाँ गाँव है , वहाँ उद्योग नहीं है और जहाँ उद्योग है , वहाँ गाँव नहीं है । यह स्थिति अच्छी नहीं है और यह भी औपनिवेशिक काल की एक विरासत है ।' खेती के बाद सबसे अधिक रोजगार देने वाले हथकरघा उद्योग, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और जंगल पर आश्रित रोजगार के अवसरों को समाप्त करने का खुला खेल शुरू हो चुका है। विकेंद्रीकरण से कम पूंजी लगा कर अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा, इस सिद्धांत को अमली रूप देने वाले कानून को दस अप्रैल 2015 को पूरी तरह लाचार बना दिया गया। सिर्फ लघु उद्योगों द्वारा उत्पादन की नीति के तहत बीस वस्तुएं आरक्षित रह गई थीं। जो वस्तुएं लघु और कुटीर उद्योग में बनाई जा सकती हैं उन्हें बड़े उद्योगों द्वारा उत्पादित न करने देने की स्पष्ट नीति के तहत 1977 की जनता पार्टी की सरकार ने 807 वस्तुओं को लघु और कुटीर उद्योगों के लिए संरक्षित किया था। यह नीति विश्व व्यापार संगठन की कई शर्तों के आड़े आती थी इसलिए 1991 के बाद लगातार यह सूची संकुचित की जाती रही। विदेशी मुद्रा के फूलते गुब्बारे और भुगतान संतुलन के 'सुधार' के साथ यह शर्त जुड़ी थी कि उत्पादन में मात्रात्मक प्रतिबंध नहीं लगाए जा सकेंगे। विश्व व्यापार संगठन की इस शर्त के कारण 1 अप्रैल, 2000 को संरक्षित सूची से 643 वस्तुएं हटा दी गईं।

जिन बीस वस्तुओं को हटा कर संरक्षण के लिए बनाई गई सूची को पूरी तरह खत्म किया गया था उन पर गौर कीजिए- अचार, पावरोटी, सरसों का तेल, मूंगफली का तेल, लकड़ी का फर्नीचर, नोटबुक या अभ्यास पुस्तिका और रजिस्टर, मोमबत्ती, अगरबत्ती, आतिशबाजी, स्टेनलेस स्टील के बरतन, अल्युमिनियम के घरेलू बरतन, कांच की चूड़ियां, लोहे की अलमारी, लोहे की कुर्सियां, लोहे के टेबल, लोहे के सभी तरह के फर्नीचर, रोलिंग शटर, ताले, कपड़े धोने का साबुन और दियासलाई। बड़ी पूंजी, आक्रामक विज्ञापन, मानव-श्रम की जगह मशीन को तरजीह देने वाली तकनीक से लैस देशी-विदेशी खिलाड़ी अधिक रोजगार देने वाले इन छोटे उद्योगों को लील जाएंगे।

इस प्रकार के छोटे और कुटीर उद्योगों के उत्पादों की खपत को बढ़ावा देने के लिए केंद्रीय एवं राज्य-स्तरीय सरकारी क्रय संस्थाओं द्वारा लघु और कुटीर उद्योगों से ही सामान खरीदने की नीति को भी निष्प्रभावी बनाने की दिशा में काम हो रहा है। इससे ठीक विपरीत स्थिति पर गौर करें। बड़े उद्योगपतियों को बढ़ावा देने के लिए नियम-कानून बदल देने का भी इतिहास रहा है। सरकार द्वारा नियम कानून बदल कर अपने प्रिय औद्योगिक घराने को बहुत बड़े पैमाने पर लाभ पहुंचाने के प्रमुख उदाहरणों में अंबानियों के उदय को प्रायोजित करने के लिए तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा सिर्फ उन्हें ही सिंथेटिक धागे के उत्पादन के लिए कच्चे माल के आयात की इजाजत देने के साथ-साथ हथकरघा द्वारा तैयार की जाने वाली कपड़ों की किस्मों की आरक्षित सूची को निष्प्रभावी बना देना है। गौरतलब है कि कपड़ा और उद्योग नीति के इन नीतिगत फैसलों के द्वारा अंबानी को देश का सबसे बड़ा औद्योगिक घराना बनाने के पहले तक सूती कपड़े कृत्रिम धागों से बने कपड़ों से सस्ते थे। कृत्रिम धागों से पावरलूम पर बने कपड़ों की इजाजत के साथ-साथ लाखों हथकरघा बुनकरों की आजीविका छिन गई है। पहले पावरलूम पर सिर्फ 'कोरे कपड़े' और हथकरघे पर बिनाई की विविध डिजाइनों के कपड़ों को बनाने की इजाजत थी।

यह कानून 1985 में बन गया था। तब बाईस किस्म के कपड़े इस कानून के तहत हथकरघे के लिए संरक्षित किए गए गए थे। पावलूम लॉबी ने कानून को 1993 तक मुकदमेबाजी में फंसाए रखा और 1993 में जब यह प्रभावी हुआ तब संरक्षित किस्मों की संख्या ग्यारह रह गई। एक प्रामाणिक अध्ययन के अनुसार हथकरघे पर बने होने के दावे वाले सत्तर फीसद कपड़े दरअसल मिलों या पावरलूम पर बने होते हैं।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तीस लाख लोगों को काम मिला है जबकि हथकरघा से दो करोड़ लोग जुड़े हैं। अठारहवीं सदी के फ्रांसीसी यात्री फ्रैन्कोए पिरार्ड डी लावाल ने अपने यात्रा विवरण में बताया है कि अफ्रीका के दक्षिणी छोर से चीन तक लोग भारतीय हथकरघे पर बने कपड़ों से अपना शरीर ढंकते थे। उनके अनुसार भारत के पूर्वी तट के सिर्फ एक बंदरगाह से सालाना पचास लाख गज कपड़े का निर्यात होता था।

पारंपरिक हुनर,कला और हस्तशिल्प से जुड़े इन तमाम रोजगारों को समाप्त करने की नीति को लागू करने के साथ-साथ जनता की आंख में धूल झोंकने के लिए केन्द्र सरकार प्रचारित कर रही है कि वह हुनर प्रशिक्षण के लिए योजना चला रही है।

सरकारी नौकरियों की स्थिति के बारे में सरकार ने

संसद में लिखित सूचना दी है। केंद्रीय कार्मिक मंत्री जितेंद्र सिंह ने सदन में लिखित रूप से कहा है कि 2013 की तुलना में 2015 में केंद्र सरकार की सीधी भर्तियों में 89 फीसदी की कमी आई है। अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों की भर्ती में 90 फीसदी की कमी आई है। 2013 में केंद्र सरकार में 1, 54,841 भर्तियां हुई थीं जो 2014 में कम होकर 1, 26, 261 हो गईं। मगर 2015 में भर्तियों की संख्या में अचानक बहुत कमी हो जाती है। सवा लाख से कम होकर करीब सोलह हज़ार हो गयी। बिना किसी नीतिगत फैसले के इतनी कमी नहीं आ सकती। 2015 में केंद्र सरकार में 15,877 लोग की सीधी नौकरियों पर रखे गए। 74 मंत्रालयों और विभागों ने सरकार को बताया है कि अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों की 2013 में 92,928 भर्तियां हुई थीं। 2014 में 72,077 भर्तियां हुईं। मगर 2015 में घटकर 8,436 रह गईं। इस प्रकार नब्बे फीसदी गिरावट आई है।

2015-18 के बीच रेलवे में रोजगार नहीं बढ़ेगा। रेलवे के मैनपावर की संख्या 13, 31, 433 ही रहेगी। जबकि 1 जनवरी 2014 को यह संख्या पंद्रह लाख थी। करीब तीन लाख नौकरियां कम कर दी गई हैं। 2006 से 2014 के बीच 90,629 हज़ार भर्तियां हुईं। अमरीका में एक लाख की आबादी पर केंद्रीय कर्मचारियों की संख्या 668 है। भारत में एक लाख की आबादी पर केंद्रीय कर्मचारियों की संख्या 138 है और यह भी कम होती जा रही है।

आल इंडिया काउंसिल फार टेक्निकल एजुकेशन की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार साठ प्रतिशत इंजीनियर नौकरी पर रखे जाने के काबिल नहीं हैं। भारत में हर साल आठ लाख इंजीनियर पैदा होते हैं। इनकी फीस में तो कोई कमी नहीं हुई। ये काबिल नहीं हैं तो इंजीनियरिंग कालेजों का दोष हैं। उन्होंने इतना खराब इंजीनियर लाखों रुपये लेकर कैसे बनाया । उनके बारे में कोई टिप्पणी नहीं है। अब बाज़ार में नौकरियां नहीं हैं तो पहले से ही इंजीनियरों को नाकाबिल कहना शुरू कर दो ताकि दोष बाज़ार पर न आए। अगर साठ प्रतिशत इंजीनियर नालायक पैदा हो रहे हैं तो ये जहां से पैदा हो रहे हैं उन संस्थानों को बंद कर देना चाहिए।

काला धन और भ्रष्टाचार

देश के सबसे बड़े पूंजीपतियों को नाजायज लाभ पहुंचाने वाली केन्द्र सरकार काले धन को समाप्त करने का दावा करती है तो उससे बढ़ कर हास्यास्पद और क्या हो सकता है? सच्चाई तो यह है कि एँण बैंक की स्विट्जरलैन्ड स्थित जेनेवा शाखा में कई भारतीयों के गुप्त खाते होने की खबर को आये काफी समय बीत चुका है।दुनिया भर के कई हथियार तस्कर ,नशीली दवाओं के अवैध धन्धे करने वाले तथा भ्रष्ट नेताओं के नाम उजागर हुए हैं।इस सूची में भारत के बडे उद्योगपति,सिनेमा स्टार आदि के नाम थे। इस सूची के सार्वजनिक होने के बाद सरकार को इन खाताधारकों के खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई करनी चाहिए थी,इसके बजाए सरकार ने इन खाताधारकों से नजदीकी संबंध होने के कारण ऐसी कोई कार्रवाई नहीं कि बल्कि उस राशि को कबूल लेने की छूट की घोषणा की है।

पनामा नामक देश में दुनिया भर के कई भ्रष्ट नेताओं,अवैध व्यापार करने वाले तथा तस्करों के बैंक खातों की सूची सार्वजनिक हुई है।इस खबर के उजागर होने के बाद रूस,पाकिस्तान जैसे कई देशों में भारी हलचल मच गई।भारत में देश के सबसे उद्योगपति तथा सीने-सितारों आदि के नाम उजागर होने के बावजूद सरकार ने उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई नहीं की है।

काले धन के समाप्ति के दावे के साथ सरकार ने सबसे बड़ा कदम 'नोटबन्दी' का उठाया। अर्थव्यवस्था में चलन से बाहर किए गए नोटों का मूल्य 86 फीसदी था। इस कदम से देश में आर्थिक आपातकाल की स्थिति पैदा हो गयी।नोटों को बदलने के लिए बैंकों की लाइन में खड़े 200 से अधिक लोगों की मृत्यु हो गई। इस सबके बावजूद जिन लोगों के पास इन बड़े नोटों में अघोषित पैसा था वे उसे बदलने या उसे खर्च करने में सफल हो गए।अघोषित धन के इन मालिकों ने अपने कर्मचारियों और मजदूरों को इन नोटों में कई महीनों का एडवान्स में वेतन और बोनस देकर,सोना तथा डॉलर में बदल कर तथा पेट्रोल पंपो के माध्यम से अघोषित पैसे से बिना नुकसान उठाए मुक्ति पा ली। विपक्षी दल इस मुद्दे की गहराई में नहीं गए तथा जनता के बीच इसके खिलाफ कारगर कदम उठाने से बचते रहे।इसके फलस्वरूप साधारण गरीब लोगों में यह भ्रम फैलाने सरकार सफल हो गयी कि इस कदम से आम जनता को खास कष्ट नहीं होगा और पैसे वालों लोगों का नुकसान होगा। वास्तविकता यह है कि सरकार ने आज तक कितने नोट वापस नहीं लौटे इसका अधिकृत आंकड़ा तक घोषित नहीं किया है। सजप यह मांग करती है कि सरकार इससे संबंधित तथ्य सार्वजनिक करे तथा छोटे मूल्य के नोट उपलब्ध कराए।

कांग्रेस सरकार के समय चले लोकपाल की मांग के आन्दोलन का विपक्षी दल के रूप में भाजपा को लाभ मिला था इसके बावजूद लोकपाल के लिए कोई कारगर कानून नहीं लाया गया है। भ्रष्टाचार का एक बड़ा हिस्सा पूंजीपतियों द्वारा बिना स्रोत बताये राजनैतिक दलों को चन्दे के रूप में दिया जाता है।इस वर्ष के वित्त विधेयक के साथ ऐसे चन्दे की कोई सीमा न रखने तथा स्रोत घोषित न करने को वैधानिकता प्रदान कर दी गई है। यह ध्यान देने लायक बात है कि वर्तमान में चुनाव में प्रत्याशियों के खर्च की सीमा निर्धारित है किन्तु दलों द्वारा किए गए चुनाव खर्च की कोई सीमा नहीं है इसलिए इसका हिसाब भी गंभीरता से नहीं दिया जाता है। चुनाव के दौरान विपक्षी दलों के एक-एक नेता को खरीदने में मौजूदा शासक दल करोड़ों रुपए खर्च करता है इसलिए अघोषित आय के स्रोतों को बाधित करने में उसकी कोई रुचि नहीं है बल्कि इन बाधाओं को दूर करने के उसके द्वारा कानून बना लिए गए हैं।

चुनाव-सुधार

चुनाव में अघोषित पैसे हासिल करने और उसके बल पर चुनाव लड़ने के सन्दर्भ में ऊपर के अनुच्छेद जिक्र किया गया है। निर्वाचन प्रक्रिया के सन्दर्भ में समाजवादी जनपरिषद आनुपातिक प्रतिनिधित्व को अपनाने की पक्षधर है। इस सन्दर्भ में दल का कहना हैः

भारत के राज्य / शासन के हरेक स्तर (यथा केन्द्र, प्रदेश, जिला परिषद, प्रखंड समिति और पंचायत) पर चुनाव की पद्धति FPTP ('सबसे अधिक मत पाने वाला ही विजेता') है। इसके विरुद्ध ८० देशों में चालू और भविष्य की लोकप्रिय पद्धति 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व है।

FPTP पद्धति भारत के शासन और लोकतन्त्र में कई कमजोरियों और विकृतियों को चला बढ़ा रही है। वह नीतियों के बनने- बदलने में बहुत खतरनाक हालात पैदा कर रही है. इसकें कुछ तथ्य हैं-

1. मोदी सरकार केवल 30% जनता की पसन्द से ही लोकसभा में बहुमत लेकर आई है. करीब 60% जनता, जो उसके विरुद्ध है; वह 5 साल के लिए संसद मे बहुत कम प्रतिनिधित्व वाली और अशक्त हो चुकी है। छोटी संख्या वाली विकसित हो रही विचारधाराओं और संगठनों का तो इस पद्धति के रहते संसद, विधानसभा वगैरह में पहुँच पाना और मात्र अपनी पहचान बना कर रख पाना असंभव है।
2. देश की प्रत्येक राज्य सरकार में भी कोई एक पार्टी इसी तरह बहुमत से बहुत कम वोट लाकर भी शासक बन गई है। वे भी कई बार केन्द्र सरकार जैसे गलत और अलोकतान्त्रिक निर्णय और काम करती है। ये सारी अल्पमत वाली सरकारें दूरगामी आर्थिक और प्रशासनिक नीतियों और बड़े सामाजिक-धार्मिक प्रभाव वाले कार्यक्रम बनाती चलाती है। वे अतिवादी व्यवहार को बढ़ावा देती है जो बहुधा देश-समाज को गहरा नुकसान पहुँचाने वाली होती है। इस मुद्दे की बाबत दल द्वारा सेमिनार आयोजित किए जाएंगे तथा सहित्य प्रकाशन किया जाएगा।

भारतीय समाज में जो लोग संकीर्ण भावनाओं को फैलाते हैं,जाति-प्रथा के विचार को फैलाते हैं,मठाधीशों के वर्चस्व को मजबूत करते हैं,साम्प्रदायिकता को फैलाकर निहित वर्ग की राजनीति को मजबूत बनाते हैं,उनकी राजनीति आज ताकतवर है। समाजवादी जन परिषद जिन गरीब और कमजोर तबकों की राजनीति करती है वह मजबूत न होने पर उन तबकों का न घर चलेगा न आजीविका।यह बात हमें जनता में ले जानी होगी। शोषित वर्ग का स्वार्थ और देश का स्वार्थ परस्पर जुड़े हुए हैं। धनी वर्ग की राजनीति का मुकाबला हम इसी राजनीति के बल पर करेंगे। हमें इस उद्देश्य को स्पष्ट तौर पर दिमाग में बैठा लेना होगा। पूंजीवादी,मनुवादी सोच की ताकतें जिस प्रकार 'हिन्दू राष्ट्र' का उद्देश्य अपने दिमाग बैठाये हुए हैं, उससे देश का विघटन अवश्यंभावी है। शोषित तबकों की राजनीति को मजबूत बना कर मौजूदा देश-विरोधी राजनीति को परास्त करने का यह सम्मेलन संकल्प लेता है।

प्रस्तावक- अफलातून, समर्थक – कमलकृष्ण बनर्जी

संगठन व कार्यक्रम संबंधी प्रस्ताव

केरल में आयोजित पिछले राष्ट्रीय सम्मेलन अप्रैल 2015 के बाद देश भर की इकाइयों में पार्टी की ओर से विभिन्न सांगठनिक कार्यक्रम संपन्न हुए। इनकी पूरी रिपोर्ट सम्मेलन के समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी है। आगे के दो वर्षों के लिए हमें कार्यक्रम तय करने हैं। इसके लिए यहां प्रस्ताव में एक मोटा-मोटी खाका पेश किया जा रहा है।

सजप की संगठनात्मक स्थिति पिछले दिनों अच्छी नहीं रही है। स्थानीय स्तर पर आंदोलन हुए हैं और कई जगह

उत्साह भी बना है, लेकिन राज्य स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर इसकी उपस्थिति या प्रभाव नहीं दिखा। इसका मुख्य कारण रहा है कि हमारा संगठनात्मक ढांचा सुचारू और संचारात्मक (ण्दस्स्ल्हर्ग्ग्न्) नहीं है। संगठन में सदस्यों और सक्रिय सदस्यों की संख्या संतोषजनक रूप से नहीं बढ़ पाई है। कई मुद्दों पर हम सक्षम हस्तक्षेप नहीं कर पाए। इनका कारण भी संगठन और सदस्यों की ठीक से उपस्थिति नहीं रहना है। इन सब बातों पर ध्यान देते हुए हमें आगे के कार्यक्रम तय करने चाहिए, ताकि संगठन मजबूत बने और विभिन्न मुद्दों पर हम सक्षम हस्तक्षेप कर सकें। इनके लिए सबसे प्रमुख बात है- संगठन का स्वस्थ और मजबूत होना- 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।'

सजप के कार्यक्रम ग्रामीण जीवन को लक्ष्य कर उसमें सुधारात्मक प्रयोगों के साथ बनेंगे। सजप अपने आंदोलनो और कार्यक्रमों में से कुछ विशेष को अपने स्तर पर करेगा जबकि कई मुद्दों पर सहमना संगठनों के साथ मिलकर आगे बढ़ाएगा। पार्टी के इन सारे आंदोलनों और कार्यक्रमों का लक्ष्य इन मुद्दों की सफलता के साथ ही संगठन की मजबूती और विस्तार रहेगा। विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों को आगे बढ़ाते समय या उसे हाथ में लेते हुए पार्टी को तदर्थवाद की अवस्था से बाहर आने की कोशिश करनी होगी।

संगठन संबंधी कार्यक्रमों में हमें कुछ बुनियादी बातों पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। हम यहां प्रस्ताव करते हैं कि-

1. हर इकाई में (यह इकाई जिस स्तर की हो, अर्थात कहीं पंचायत स्तर पर है या कहीं ब्लॉक, जिला या राज्य स्तर पर है।) प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए। संभव हो तो साल में दो या तीन बार एक-एक सप्ताह का प्रशिक्षण शिविर लगाया जाए। इसके अलग स्थानीय स्तर पर दिनभर का या तीन दिन का शिविर किया जाना चाहिए। इन शिविरों को बड़ी संख्या में नए युवा लोगों को लेकर पूरी तरह से शिक्षण पर केंद्रित रखा जाना चाहिए, न कि विचार-विमर्श पर।

देश भर के सदस्यों के नाम-पते सभी ऊपरी इकाइयों में सूचीबद्ध हो और उनसे नियमित संपर्क किया जाए। सभी सदस्या व सहयोगियों के नियमित लेवी वूसली हो और चंदा पार्टी की इकाइयों में जमा हो। अगर पार्टी उचित समझे तो वहां से पार्टी सदस्यों को खर्च का पैसा दिया जाए। व्यक्तिगत स्तर पर चंदा वसूली या मानदेय वितरण न किए जाएं।

पिछले सम्मेलन में हमने जो कार्यक्रम संबंधी प्रस्ताव पारित किए उन्हें भी जैसे का तैसे स्वीकार करना चाहिए और उनके अनुसार कार्य आगे भी करने चाहिए। इनमें प्रमुख हैं-

क. प्रत्येक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दिवसों पर, जो विशेष तौर पर सजप की नीतियों के अनुकूल हों, हर इकाई में आवश्यक तौर पर कार्यक्रम लिए जाएं। जैसे- एक जनवरी- सजप स्थापना दिवस, 23 जनवरी- सुभाष बोस जयंती, 26 जनवरी- गणतंत्र दिवस, 30 जनवरी- शहीद दिवस, 8 मार्च- महिला दिवस, 23 मार्च- लोहिया जन्मदिवस- भगत सिंह शहादत दिवस, 14 अप्रैल- अंबेडकर जयंती, एक मई- मजदूर दिवस, 9 अगस्त- भारत छोड़ो आंदोलन दिवस, 2 अक्तूबर- अहिंसा दिवस, जयप्रकाश जयंती, लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव स्मृति दिवस, मानवाधिकार दिवस, 6 दिसंबर- अंबेडकर स्मृति दिवस/बाबरी ध्वंस दिवस, सावित्री बाई फूले जयंती, खान अब्दु ल गफ्फार खां पर कार्यक्रम इत्यादि।

ख-साल में कुछ खास समय को चिह्नित कर उसे किसी खास मुद्दे पर केंद्रित सप्ताह के रूप में मनाया जा सकता है। जैसे 23 जनवरी से 30 जनवरी का सप्ताह। 9 अगस्त से 15 अगस्त का सप्ताह और 2 अक्तूबर से 12 अक्तूबर का पखवारा, इत्यादि। इस दौरान क्षेत्र विशेष में संगठन के विस्तार को ध्यान में रखते हुए पदयात्रा, साइकिल यात्रा निकाली जा सकती है। इन सप्ताहों और पखबारों में ज्वलंत मुद्दों को केंद्र में रखा जाएगा। अगर तत्काल में कोई ज्वलंत मुद्दा नहीं है तो पार्टी के नीतिगत मुद्दों पर जनमत निर्माण के लिए इस अवसर का उपयोग किया जाएगा। मसलन, खेती-किसानी मुद्दा, लोकतांत्रिक सुधार, नर-नारी समता, भारतीय नागरिक संहिता का निर्माण, दलित-आदिवासी विमर्श, विकेंद्रीकरण, देश की आर्थिक व्यवस्था, ग्राम-स्वराज, प्राकृतिक कृषि इत्यादि।

ग- स्थानीय मुद्दों को लेकर प्रत्येक इकाई स्तर पर कार्यक्रम निरंतर होते रहने चाहिए। इकाईयां अपने सामथर्य के अनुसार तय कर सकती हैं कि वह हर महीने कम से कम एक कार्यक्रम अवश्य करेगी।

घ- स्थानीय और प्रादेशिक या राष्ट्रीय स्तर पर तत्काल उभरी समस्याओं और घटनाओं पर पार्टी की ओर से तत्काल नीति के अनुरूप प्रतिक्रिया व्यक्त की जानी चाहिए। घटनाओं और समस्याओ की प्रकृति के अनुसार कार्यक्रम या आंदोलन पर विचार किया जाएगा।

ङ-कुछ मुद्दों पर योजनाबद्ध तरीके से कार्यक्रम शुरू किए जा सकते हैं। इस तरह के अभियान को अपने स्तर पर या अन्य सहमना संगठनों के साथ भी चलाया जा सकता है। इनमें वर्तमान और पूर्व की सरकारों की आर्थिक नीतियों, विदेशी पूंजी निवेशीकरण, सांप्रदायिक योजनाओं के खिलाफ मुहिम चलाया जाना चाहिए। इसमें केंद्र के साथ ही विभिन्न राज्य सरकारों को भी निशाने पर रखना चाहिए।

च-विभिन्न तात्कालिक मुद्दों पर उस विषय के पार्टी से

जुड़े या पार्टी नीतियों के समर्थक विशेषज्ञ के सहयोग से पुस्तिकाओं का प्रकाशन और उसका अधिक से अधिक विक्रय।

छ-ग्रामीण इलाकों में पार्टी समर्थित राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक नारों को लेकर दीवार लेखन।

ज-पार्टी और सामयिक वार्ता का अधिकाधिक सदस्य बनाने का अभियान।

झ-सभी इकाइयों का यह परम कर्तव्य होगा कि वह अपने यहां आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों, कार्यक्रमों, गोष्ठियों, सेमिनारों, आंदोलनों, प्रेस विज्ञप्तियों को सामयिक वार्ता के संपादकीय पते पर अविलंब भेजने की व्यवस्था करे तो दूसरी इकइयां और लोग भी उनके आंदोलनों से परिचित हों और प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

इसके अलावा, पर्यावरण संबंधी, जल जंगल जमीन से जुड़े आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। इसे और आगे बढ़ाने में सदस्य सहयोग करेंगे। इन आंदोलनों के विभिन्न आयामों पर स्वायत्त रूप से भी आंदोलन उभर रहे हैं। उनमें हमारा समर्थन है। इससे जुड़ साथियों को हम जोड़ेंगे और उनके साथ संघर्षों में यथासंभव सहभाग करेंगे।

अब लगभग हर सदस्य के पास या उनके परिवार में मोबाइल फोन उपलब्ध है। अनेक साथी अत्याधुनिक संचार माध्यमों- व्हाट्स एप, फेसबुक, ट्विटर, ईमेल से जुड़े हैं। इन संचार साधनों का भरपूर उपयोग पार्टी को करना चाहिए। लेकिन इन साधनों के उपयोग में स्वछंदता नहीं आनी चाहिए। बल्कि इन स्वतंत्र, तीव्रगामी और विश्वव्यापी साधनों के उपयोग में अत्याधिक सतर्कता, अनुशासन और वैचारिक प्रतिबद्धता की जरूरत है। अन्यथा ये साधन संगठन को तत्काल छिन्न-भिन्न करने में अधिक सक्षम साबित होंगे। पार्टी बयानों, कार्यक्रमों और रिपोर्टों को इन पर जारी करते समय पार्टी की पदाधिकार जनित जिम्मेदारियों को पूरी तरह और कठोरता से अनुशरण किया जाना चाहिए।

अंत में, पश्चिमी यूरोप में पैदा हुए और विकसित हुए वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में सफल होने और इसे आगे बढ़ाने के लिए जरूरी है कि इसे चलाने के तकनीक और उपकरण भी वहीं से लिए जाएं। इसमें सबसे जरूरी है कि संसदीय लोकतांत्र को चलाने के लिए मानसिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक तौर पर मध्यम वर्ग बड़ी संख्या में हों। सजप में स्थानीय स्तरों पर इस वर्ग का जुड़ाव नहीं दिखता है। हमें इस वर्ग को अपने साथ लाने का प्रयास करना चाहिए।

अन्य वर्गों जिनमें, किसान, मजदूर, दलित, पिछड़े, महिला आदि हैं, उन्हें इस लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ लाने का उपक्रम करना होगा। क्योंकि इस देश का सामाजिक चरित्र, प्रवृत्ति और हाव-भाव राजतंत्रीय, सामंती और गुलामी का रहा है। इन व्यवस्थाओं में लंबे समय तक बने रहने के कारण हमारा यह चरित्र विकसित हो चुका है। इससे निकलकर लोतांत्रिक चरित्र में समाज और खुद को बदलने का तरीका निस्संदेह वही होना चाहिए जो गांधी और अंबेडकर ने बताए हैं। गांधी का 'व्यक्ति निर्माण' और अंबेडकर का 'शिक्षित, संगठित' होने का सिद्धांत हमें संगठनात्मक आचरण में और मजबूत करने की जरूरत है। ऊपर सुझाए गए शिक्षण- प्रशिक्षण कार्यक्रमों में यह प्रमुख एजेंडा होगा।

इनके साथ ही कुछ वर्तमान मुद्दे पर जिनपर आंदोलन और संघर्ष में साझीदार होने की जरूरत है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं-

1. समान शिक्षा प्रणाली की मांग करते हुए आंदोलन। अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच के कार्यक्रमों में हमारा सहयोग रहा है और इसे और तेज करने की जरूरत है। इस कार्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थी युवजन सभा को पुनर्गठित किए जाने की आवश्यकता है।

2. बाजारवाद के कारण नर्सिंग होम और दवा कीमतों में बेतहाशा वृद्धि के खिलाफ देशभर में खासकर पंश्चिम बंगाल में चल रहे आंदोलन में भागीदारी।

3. भाषा आंदोलन, उच्च न्यायपालिका में अंग्रेजी के अलावा देसी भाषाओं को लागू करवाने के लिए संघर्ष।

4. देश में विभिन्न मुद्दों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण कम होता जा रहा है। इसको लेकर जन जागरण और बौद्धिक जगत में सजगता कार्यक्रम। ऑल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क से जुड़कर इसे साकार किया जा सकता है।

5. अंध श्रद्धा निर्मूलन को आगे बढ़ाने के लिए कार्यक्रम किए जाएं और चल रहे कार्यक्रमों में भागदारी हो।

6. नदी बचाओ कार्यक्रम में भागीदारी। राजस्थान के द्रव्यवती नदी पर इसपर कुछ काम हुए हैं। इनपर काम करनेवाले समूहों से नाता जोड़ने का उद्यम। तिब्बत मूल की नदियों पर चीनी वर्चस्व का विरोध।

7. केरल के प्लाचीमाड़ा में कोका कोला कंपनी फिर शुरू हो रही है। इस प्लांट के पच्चीस साल पूरे हो रहे हैं। इसके खिलाफ फिर पालघाट में धरना शुरू हो गया है। हम इसका समर्थन करते हैं और इसमें शामिल होंगे। होशंगाबाद, वाराणसी के मेहदीगंज और तमिलनाडु के ताम्रपर्णी नदी पर भी कोकाकोला के प्लांट लग रहे हैं, जिनका विरोध हो रहा है। इनके विरोध के लिए एक निश्चित तारीख तय किया जाएगा।

8. जीरो बजट की पालेकर प्रणाली कृषि के लिए पालेकर नेचुरल फार्मिंग एसोसिएशन की तर्ज पर हम नेचुरल फार्मर ऐसोसिएशन का गठन करेंगे।

सामाजिक प्रस्ताव

जब हमारा देश आज़ाद हुआ और एक नए समाज और राष्ट्र के निर्माण के लिए संविधान की रचना की गयी, तो निश्चय ही यह आज का समाज नहीं था जिसका सपना देखा जा रहा था। हमारा समाज शायद कभी भी धर्म, जाति, क्षेत्रों आदि में इतना विभाजित नहीं था जितना आज है। यह धर्मान्धता और नफरत नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार के आने से सीधे तौर पर जुडी हुई है। यह बिना अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि पिछले कई दशकों में पहली बार देश की सांस्कृतिक विविधता इतने खतरे में है। अपने 2014 के चुनाव प्रचार से ही नरेन्द्र मोदी ने देश के मुस्लिम समुदाय के खिलाफ माहौल बनाना शुरू कर दिया था; और यही कारण है कि भाजपा के सत्ता में आने के बाद देश में नफरत और असहिष्णुता की लहर चल रही है। यह सारा हंगामा जारी रखने के लिए, भाजपा और उसके सहयोगी संगठन गाय और गौरक्षा का इस्तेमाल कर रहे हैं, वे गाय को इस देश का सांस्कृतिक प्रतीक बनाना चाहते हैं और इस तरह हिन्दू धर्म के एक संगठित रूप में कायम करना चाहते हैं।

वह मुस्लिम विरोधी नीति जो प्रधानमंत्री मोदी ने 2014 में लागू की थी, उसका भरपूर नज़ारा 2017 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में भी देखने को मिला, जिसमें भाजपा ने देश की सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी वाले क्षेत्र में एक भी मुस्लिम प्रत्याशी खडा नहीं किया। यही भाजपा और मोदी का सन्देश भी था, कि सिर्फ 'हिन्दू मतों' के बल पर चुनाव जीतकर सरकार बनाई जा सकती है, जिसमें मुसलमानों की कोई भागीदारी न हो। यहाँ हमें स्पष्ट होना चाहिए कि हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा और उसका जो सपना वर्तमान सत्ता और उससे जुड़े संगठन देखते हैं, वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है और इसीलिये पिछड़ी और दलित जातियां, महिलाएं उसमें शोषण का शिकार होते हैं, वह मनु के कानूनों पर आधारित होगा.

गौमांस/गौहत्या का मुद्दा पहले मुसलमानों के खिलाफ एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया, फिर इसका मुंह दलितों की तरफ मोड़ दिया गया, जो तथाकथित 'सांस्कृतिक पिरामिड' के सबसे निचले पायदान पर है। देश के अलग अलग हिस्सों, जिनमें गुजरात भी शामिल है, में मरे हुए जानवरों की खाल निकालना और चमड़े के लिए उनका इस्तेमाल दलितों का एक परम्परागत पेशा है जो जाति व्यवस्था के अन्यायपूर्ण दबाव के कारण उनका काम बना रहा है। इस देश के सवर्ण खुद के थोपे हुए इस पेशे को ही आधार बनाकर दलितों को सामाजिक जीवन के हाशिये पर धकेलते हैं। गाय के हथियार को आधार बनाकर गुजरात के ऊना और अन्य जगहों पर दलितों पर हो रहे अत्याचारों का कारण उनके सशक्तिकरण को रोकना और आरक्षण एवं अन्य योजनाओं द्वारा उनकी बढ़ती सामाजिक पूंजी को दबाना है। दलितों की जमीन को लेकर बढ़ती मांग भी सवर्ण जमींदारों द्वारा दबाने की कोशिश जारी है। इन अत्याचारों के खिलाफ स्वतः स्फूर्त आन्दोलन एक सकारात्मक चिन्ह है हालांकि ये प्रतिक्रियाएं आम तौर पर भावुक/भावनाओं पर आधारित होती हैं। इसके खिलाफ हमारे राजनैतिक जवाब को गांधी, आंबेडकर और लोहिया के विचारों पर आधारित एक बड़ी लहर बनाने की जरूरत है। समाजवादी जन परिषद् यह महसूस करता है कि ऐसा आन्दोलन भारतीय राजनीति को और अधिक जीवंत तथा सामाजिक व्यवस्था को समृद्ध बनाएगा और अंततः पूरे समाज को गति देने में सक्षम होगा.

एल.पी.जी। यानि, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के 25 सालों की परिणिति देश के आमजनों के लिए एक आर्थिक दुर्घटना के रूप में हुई है। किसान और छोटे व्यापारी आर्थिक नीतियों के चलते अपनी आजीविका से उजाड़ दिए गए हैं। औद्योगीकरण के इस अतियांत्रिक दौर में साधारण रूप से कुशल लोगों के लिए पर्याप्त अवसर नहीं हैं, जो एक समय में उनके पास थे। जाहिर है इससे उपजा गुस्सा सामजिक ढाँचे के भीतर तनाव पैदा करता है और उन्हें लगता है कि उनके अवसर पिछड़े वर्गों के लोगों को आरक्षण द्वारा छीन लिए गए हैं.

पटेल और मराठा जातियों के आरक्षण की मांग के आन्दोलन का यही मुख्य कारण था। यहाँ गौरतलब है कि दोनों आन्दोलनों में नारा यह था कि या तो हमें अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) में शामिल किया जाये या पूरे आरक्षण को ही रद्द करो। ऐतिहासिक रूप से ये दोनों की जातियां अपने अपने इलाकों में शासक जातियां रही हैं और उन्हें सवर्ण जातियों का सम्मान मिला हुआ है, इसलिए उन्हें आरक्षण देना असंवैधानिक है, इसलिए अंततः इन आंदोलनों का मकसद आरक्षण को ख़त्म करवाना था।

सवर्णों/'ऊंची जातियों' की शोषित जातियों के प्रति यह असहिष्णुता जाति व्यवस्था के कट्टर स्वरुप की और इशारा करती है, जो गांधीजी और आज़ादी के आन्दोलन के दौरान कुछ ढीला हुआ था। मुसलमानों और फिर दलितों के प्रति बढ़ती नफरत न केवल जाति व्यवस्था को मजबूत करती है

बल्कि हिन्दू समाज की कट्टरता को उभारती है और हिन्दुओं में एक साम्प्रदायिक प्रवृति को बढ़ावा देती है जो आखिरकार हिन्दू समाज देश के टुकड़े टुकड़े कर सकती है। आजादी के आन्दोलन की और गांधीजी की साझी और सौहार्द्रपूर्ण विरासत के गायब होने से ऐसी साम्प्रदायिक शक्तियां पैदा हो रही हैं और फल फूल रही हैं। इसलिए भारतीय राजनीति और विमर्श में इस विरासत को वापस लाने की जरूरत है, इसके साथ-साथ दलितों, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों की एक गतिशील –जीवंत एकता की जरूरत है जिसका आह्वान लोहिया ने साठ के दशक में सम्पूर्ण बदलाव की राजनीति के नज़रिए से किया था।

जहां दलितों, आदिवासियों, किसानों और अल्पसंख्यकों की हालत बहुत बुरी है वहीं महिलाओं की स्थिति और भी खराब है। वे दोहरा शोषण झेलती हैं। महिलाओं पर हिंसा कम होने के बजाय बढ़ी है। जो महिलाएं अपने उत्पीडन और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं उन्हें बहुत अपमान और दमन का सामना करना पड़ता है। सोशल मीडिया भी महिलाओं को धमकी देने, उनपर लांछन लगाने और परेशान करने का एक जरिया बन गया है। महिलाओं पर तेज़ाब के हमले, बलात्कार, जान से मारने की धमकी और हत्याएं भी बदस्तूर जारी हैं। पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या में तेजी से कमी आ रही है। महिला भ्रूण हत्या, दहेज़ हत्याएं जैसे अपराध आज भी आम हैं। महिलाओं पर काम का बोझ बढ़ा है क्योंकि वे घर का और बाहर का दोनों काम बिना उचित मूल्य और सम्मान के करने पर मजबूर हैं। शराब/नशाखोरी भी महिलाओं की समस्या को बढाती है, उन्हें हिंसा और आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के लिए बराबरी की शुरुआत घर से होगी और इसलिए सजप और उसके कार्यकर्ताओं के सजग और सक्रिय होना होगा।

यह देखा जा रहा है कि न्यायपालिका और विभिन्न शासन संस्थाओं द्वारा आरक्षण को ख़त्म करने की कोशिशें की जा रही हैं। नियमानुसार आरक्षित वर्ग के प्रतिभाशाली छात्रों को अनारक्षित वर्ग में भी प्रतियोगिता के आधार पर जगह मिलनी चाहिए। लेकिन ज्यादा अंक होने पर भी अपने आरक्षित वर्ग में ही प्रवेश दिया जा रहा है। ऐसे में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए अवसर सिर्फ 27% तक ही सिमट कर रह जाते हैं, जबकि आबादी में उनका हिस्सा 52% तक है। ऐसे में यह स्थिति बनती है कि सारी अनारक्षित सीटें सिर्फ ऊंची जातियों के छात्रों को ही उपलब्ध होती हैं, जो उनकी आबादी से कहीं अधिक हैं और आरक्षण के मतलब को ही ख़त्म कर देती है। यदि यह स्थिति बनी रहती है तो आरक्षण का एक विकृत स्वरुप में पतन हो जायेगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि केंद्र और राज्य सरकारें आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए आरक्षण की बात कर रही हैं, ऐसे में सजप को संविधान सम्मत- पिछड़ी जातियों को अवसर को प्रदान करने वाले आरक्षण को बचाना होगा.

समाज के कमजोर तबकों, शोषितों, महिलाओं को ताकत और हिम्मत देने का एक प्रमुख जरिया शिक्षा है, लेकिन जैसा कल साथी अनिल सदगोपाल ने बताया, प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की अच्छी शिक्षा ज्यादातर लोगों की पहुँच के बाहर है। सकारी स्कूलों को योजनाबद्ध तरीके से सारी सुविधाओं से वंचित किया गया है। उनमें अब अप्रिशिक्षित और अनिच्छुक शिक्षक हैं जिन्हें नाममात्र का वेतन दिया जाता है। ऐसे में समान स्कूल व्यवस्था, एवं समाज, पर्यावरण और विकल्प विचार से जुड़ा पाठ्यक्रम ही बराबरी की शिक्षा व्यवस्था ला सकता है।

एक बड़ी लड़ाई मातृभाषा में शिक्षा और रोजगार के अवसर मुहैया कराने की है। यह हमारे समाज के विकास और गैर बराबरी को ख़त्म करने के लिए अनिवार्य है। इससे जुडी एक लड़ाई का नेतृत्त्व सजप से जुड़ा छात्र अनूप दिल्ली के आंबेडकर विश्वविद्यालय में कर रहे हैं। इस लड़ाई को हमें शिक्षा के हर स्तर पर छेड़ना होगा।

रोहित वेमुला की मजबूरन आत्महत्या, सभी युवाओं के लिए एक प्रतीक बन गयी है, कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, विश्वविद्यालय और यह फासीवादी सरकार, अपने हक के लिए लड़ने वाले और अपने गरीब दलित पृष्ठभूमि से लड़कर उच्च शिक्षा तक पहुँचने वाले छात्रों के सपनों की कैसे बार बार हत्या कर देती है। इसके खिलाफ देशभर के विश्वविद्यालयों में और युवाओं में उभरे गुस्से में बदलाव की चिंगारी छिपी है जिसे हमें पहचानकर जलाना होगा।

साथ ही देश में सरकारी उच्च शिक्षा संस्थानों को बंद करने या महंगा बनाने और शिक्षा को मजदूर/क्लर्क बनाने तक सीमित करने के लिए सरकार ने छात्र आंदोलनों को मीडिया की मदद से राष्ट्रविरोधी बताकर दमित किया है। निजी और विदेशी विश्वविद्यालयों को स्थापित करने, गरीब बच्चों को घटिया और अधूरी शिक्षा तक सीमित रखने पर यह सरकार आमादा है, ताकि धनी वर्ग के बच्चे ही उपलब्ध अवसरों पर कब्ज़ा जमाए रख सकें। शोध की सीटों में भारी कटौती, फीस वृद्धि और बाजार से जुड़े कोर्स बढ़ाकर अपने इरादे साफ़ कर दिए हैं। इस पूरे कुचक्र में सजप को उच्च शिक्षा पर सबकी पहुँच और उच्च शिक्षा की सही दिशा सुनिश्चित करने के लिए आगे आना होगा। जहां संकट बहुत बड़ा है वहीं आन्दोलन की संभावनाएं भी बढ़ी हैं।

प्रस्तावक- स्मिता, विनोद पय्याडा

●

रिहाई मंच

अनिल यादव

लखनऊ 20 मई 2017। रिहाई मंच ने बाराबंकी सेशन कोर्ट द्वारा 17 साल बाद कश्मीर निवासी गुलजार अहमद वानी और सिद्धार्थनगर के अब्दुल मोबीन को साबरमती एक्सप्रेस विस्फोट मामले में बरी किए जाने को खुफिया एजेंसियों की साम्प्रदायिक कार्यशैली और मानसिकता पर जोरदार तमाचा बताया है। मंच ने कहा कि अगर सरकार में थोड़ी भी लाज-शरम होगी तो वो इन होनहार छात्रों की जिंदगी तबाह करने वाले खुफिया अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई करेगी।

रिहाई मंच द्वारा जारी प्रेस विज्ञप्ति में मंच महासचिव राजीव यादव ने कहा कि गुलजार अमहद वानी का बरी होना खुफिया एजेंसियों के उस साम्प्रदायिक मानसिकता को बेनकाब करता है जो कश्मीरियों की आतंकी छवि बनाकर उनके खिलाफ आम हिंदुओं को उकसाते हैं। उन्होंने कहा कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय से अरबी साहित्य में पीएचडी कर रहे बारामुला जिले के गुलजार वानी व अन्य छात्रों को 2001 में खुफिया एजेंसियों और पुलिस ने सिर्फ इसलिए टारगेट कर फंसाया क्योंकि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों ने एक हॉस्टल में संदिग्ध गतिविधियां करते हुए रंगे हाथों पकड़े गए खुफिया एजेंसी के अधिकारी को प्रेस कांफ्रेस में पेश कर दिया था। जहां उसने यह स्वीकार किया था कि उसे ऊपर से आदेश था कि वो विश्वविद्यालय के छात्रों के खिलाफ देश विरोध के कुछ झूठे सुबूत इकट्ठा करे ताकि कुछ छात्रों को फंसाया जा सके। इस घटना के बाद से खुन्नस खाए खुफिया एजेंसी और पुलिस ने एएमयू को आतंकी गतिविधियों के केंद्र के बतौर प्रचारित कर वहां के छात्रों को आतंक के झूठे आरोपों में फंसाने का अभियान शुरू किया था। जिसमें पीएचडी छात्र गुलजार अहमद वानी को पुलिस ने कश्मीरी चरमपंथी संगठन हिजबुल मुजाहिदीन और सिमी के बीच की कड़ी बताया था।

राजीव यादव ने कहा कि गुलजार वानी और अब्दुल मोबीन के बरी होने के बाद अलीगढ़ विश्वविद्यालय को आतंकवाद के नाम पर बदनाम करने वाले नेताओं और पुलिस अधिकारियों को देश की जनता से माफी मांगनी चाहिए। उन्होंने उत्तर प्रदेश की अदालतों पर आतंकवाद के फर्जी आरोपों में फंसाए गए बेगुनाहों के मामलों को जानबूझकर लटकाने का आरोप लगाते हुए कहा कि गुलजार वानी के मामले में 25 अप्रैल को सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस जेएस खेहर और डीवाई चंद्रचूड़ की बेंच ने यूपी सरकार को फटकार लगाई थी। बेंच ने कहा था कि ये शर्म की बात है कि एक शख्स आतंकवाद के 11 में से 10 मामलों में बरी हो चुका है, वो 16 साल से जेल में है और इसके बावजूद आप चाहते हैं कि उसे जमानत नहीं दी जाए। तब बेंच ने ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया था कि सुनवाई 31 अक्टूबर 2017 तक पूरी की जाए नहीं तो 1 नवंबर 2017 को गुलजार को जमानत पर रिहा कर दिया जाए। गुलजार के बरी होने ने साबित कर दिया कि निचली अदालतें सरकारों के दबाव में मुकदमों को लटकाती हैं। राजीव यादव ने मांग की कि सर्वोच्च न्यायालय ऐसे मामलों में निचली अदालतों द्वारा सरकार के दबाव में मामलों को लटकाने पर एक न्यायिक जांच आयोग का गठन करे ताकि इस अपराध में शामिल खुफिया-सुरक्षा एजेंसियों के अधिकारियों व न्यायिक प्रक्रिया को लंबित करने वालों की शिनाख्त और उन पर कार्रवाई हो सके।

रिहाई मंच ने सुप्रीम कोर्ट से मांग की है कि जब आपने गुलजार जैसे नौजवानों की इतनी लंबी जेल को शर्म की बात कही है तो ऐसे में इस मामले में विशेष हस्तक्षेप कर मुआवजे व पुर्नवास की सरकार से गारंटी करवाएं, जिससे देश के सामने गुलजार जैसे बेगुनाहों का मुकदमा एक नजीर बन सके।

प्रवक्ता रिहाई मंच लखनऊ. 8542065846

वर्तमान सभ्यता प्रकृति के दोहन पर टिकी है

आधुनिक सभ्यता का विकल्प मनुष्य की पूरी जीवन पद्धति को प्रकृति के अनुकूल बनाने की है। दुनिया हावी अंतहीन आकांक्षाओं को खतम कर प्रकृति की सहयोगी सरल जीवन पद्धति की दिशा में ढूढ़ना होगा। महात्मा गाँधी ने सचेत किया था, 'संसार में हर व्यक्ति की जरूरत के लिए यथेष्ट सम्पदा है, लेकिन एक भी व्यक्ति की लिप्सा को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है।'' वर्तमान सभ्यता की मूल मान्यता है जीवन के उन्नयन के लिए उत्तरोत्तर अधिक उत्पादन और इके लिए बढ़-चढ़कर प्रकृति का दोहन। इस सूत्र के अनिवार्य विनाश के बीज हैं, क्योंकि सीमित धरती से असीमित संपदा का आग्रह है।

विकल्प की शुरुआत कृषि क्षेत्र से ही हो सकती है। इसमें काफी हद तक स्वायत्तता है। आधुनिक औद्योगीकरण के युग में ही कृषि पराश्रित और बाजार का बंधक है। यह न सिर्फ उद्योगों के लिए कच्चे मालों का आपूर्तिकर्ता है बल्कि उर्वरकों और कृषि यंत्रों के लिए उन्हीं पर निर्भर भी है।

भौतिक जगत में व्याप्त एंट्रोपी का सिद्धान्त जो जीव जगत और मानव समाज के व्यवहारों पर भी लागू है। अर्थशास्त्री हरमन डॉली ने कहा है कि हमारे सकल कार्यकलापों का परिणाम भौतिक सीमाओं के कारण अंततः शनैः शनैः एक दूसरे पाषाण युग की तरफ ले जाने वाला है जो उपयोगी ऊर्जा के अनिवार्य क्षरण में निहित है। अतः यह मनुष्य की गतिविधियों पर निर्भर करता है कि वह अपनी प्राकृतिक सीमाओं को समझते हुए मानव अस्तित्व को दीर्घकालीन और तुलनात्मक दृष्टि से सुखद व सहनीय बनाता है या प्राकृतिक पूँजी के अत्यधिक दोहन से आपदापूर्ण।

जापान के ताकम्यो फुरानों ने सात एकड़ के धान के खेत में कीटों को मार कर खाने और अपने अवशिष्ट से धान को आवश्यक पोषण तत्व पहुँचाने वाले बत्तखों का सहारा लिया। भारत में भी पारंपरिक कृषि के आधार पर बिना रासायनिक खाद और आधुनिक मशीनों के काफी अच्छी पैदावार हासिल किया जा रहा है।

क्यूबा में भी जब 1980 में सोवियत व्यवस्था ध्वस्त हो गयी और रूस से क्यूबा को मिलने वाली मदद बन्द हो गयी तो क्यूबा ने बड़े फार्मों को तोड़ कर छोटे-छोटे सहयोगी और निजी फर्मों में बदल दिया। रासायनिक उर्वरक की जगह जैविक खाद और जैविक कीटरोधी औषधियों को विकसित कर लिया।

समाजवादी आंदोलन को जीवित रखने की दृष्टि से गठित समता संगठन और बाद में समाजवादी जनपरिषद् ने किशन पटनायक के नेतृत्व में औद्योगिक व्यवस्था के विकल्प को सदा अपने उद्देश्यों के केन्द्र में रखा है। पर्यावरण संकट के मौजूदा संदर्भ में यह महज पसंद या नापसंद की बात नहीं है। बल्कि, मानव जाति की अस्तित्व की माँग है। आधुनिक विकास में निहित मृत्यु कामना के विरुद्ध दीर्घ जीवन के विकल्प की माँग है।

गाँधी संग्रहालय में समाजवादी जनपरिषद् के तत्वावधान में आयोजित किशन पटनायक स्मृति व्याख्यान में बोलते हुए प्रसिद्ध समाजवादी लेखक-विचार सच्चिदानंद सिन्हा ने उपर्युक्त बातें कहीं। इस व्याख्यान को सुनने के लिए पटना के अलावा बेतिया, मोतिहारी, सीतामढ़ी, मुजफ़्फ़रपुर, नालंदा, रोहतास, गया, सीवान व सासाराम के भी साथी बड़ी संख्या में मौजूद थे।

श्री शिवानन्द तिवारी (पूर्व सांसद), श्री डा. संजय पासवान (पूर्व केन्द्रीय मंत्री), श्री प्रेमकुमार मणि (वरिष्ठ साहित्यकार), श्री श्रीकान्त (वरिष्ठ पत्रकार), श्री रजि अहमद (निदेशक गाँधी संग्रहालय)।

सभा की अध्यक्षता डा0 स्वाति ने की, इस अवसर पर वाराणसी के वरिष्ठ साथी चंचल मुखर्जी भी मौजूद थे। विषय प्रवेश समाजवादी जन परिषद के राष्ट्रीय संगठन मंत्री अफलातून ने कराया। संचालन नवेन्दु प्रियदर्शी ने किया।

–नवीन

पुस्तक-चर्चा

एक सिपाही की आंखों से मानव मुक्ति की दास्तान

अतुल कुमार सिंह

भारत और नेपाल दो अलग-अलग देश होते हुए सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक रूप से एक ही दायरे में आते हैं। इसीलिए इन दोनों देशों की नियति, स्थिति, भाग्य और लक्ष्य एक सा ही है। दोनों देशों के बीच आमजन के माध्यम से होनेवाले सामाजिक और सांस्कृतिक आदान प्रदान इन्हें एक सूत्र में बांधे रखता है और जीवन के सूत्र खोजने में एक दूसरे के कदम से कदम मिलाते हुए अदृश्य अरूप और अनाकार जीवन संगीत को लयबद्ध करता चलता है। इसकाह लय-ताल कितनी पुरानी है, कितना नवीन है, कहना मुश्किल होगा। यों कहें कि काल की सीमा में बांधना इसे सीमित करना है। दोनों देशों के निवासियों के जीवन-दर्शन का यह लय ताल अंततः ऊपरी परावृत्त में उभरता रहता है। वह चाहे राजनीतिक गतिविधि हो, आर्थिक हो या फिर संघर्ष का रास्ता हो। कई बार आपसी संघर्ष में यह उभरकर सामने आ ही जाता है।

सामाजिक, सांस्कृतिक या कम से कम भौगोलिक अवस्थिति वह बिंदु है जहां न चाहते हुए भी दोनों देशों की नियति एक जैसी हो जाती है। इसी का नतीजा है कि जब भारत पर विदेशी ताकतों का कब्जा हुआ तो नेपाल स्वतंत्र देश रहते हुए भी इसी तरह की पीड़ा और कष्ट से बच नहीं सका। 1785 में राजवंश की स्थापना और उसके बाद की कठोर राणाशाही में भी ब्रिटिश सत्ता ने नेपाल में भी दखलंदाजी जारी रखी और उससे मुक्ति पाने को नेपाल को भी अथक संघर्ष से गुजरना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष के योद्धाओं का सक्रिय सहयोग इसमें मिलना लाजिमी था। रहता भी क्यों नहीं। पानी, वाणी से लेकर रोटी-बेटी तक तो सब रिश्ता एक-दूसरे से जुड़ा है।

हिंदी साहित्य के हस्ताक्षर के साथ ही जनांदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाते रहनेवाले रवीन्द्र भारती ने इसी माटी की गंध को सुंघते हुए दोनों देशों के दिलों में धड़कते एक ही जीवनरेखा को अंकित करने का बहुत ही सजीव और स्पंदित प्रयास किया है 'नेपाल उर्फ लद्दापार की डायरी' में। इस डायरी के न केवल कथानक और पात्र लोक से लिए गए हैं बल्कि भाषा भी उसी लोक की प्रवाहित होती है। बिहार, यूपी से लेकर नेपाल की तराई तक में प्रवाहित यह बोली या भाषा इस पुस्तक का हार्द तत्व है। भाषा और सामाजिक तानेबाने का ही प्रभाव है कि हजारीबाग के रामहरख को ठाकमांडू अपना ही देश लगता है और वह भी मुक्तिगामियों के साथ अपना जीवन न्यौछावर कर देता है। पूरी पुस्तक में नेपाल का आंदोलन घुटने के बल चलते, रेंगते, दौड़ते, गिरते, गिरकर फिर उठते और फिर नया साहस, उमंग और उम्मीद के साथ दौड़ता प्रतीत होता है। गिरने-उठने का यह क्रम कभी महाराजा की अति महत्वाकांक्षा, कभी आंदोलन के नेताओं की महात्वाकांक्षा और कभी आपसी खींचतान से ही होकर गुजरती रहती है। सत्तालोलुपता जो इस इहलोक से निर्लिप्त रहनेवाले पूरे उपमहाद्वीप की नियति जो है।

भारती ने नेपाल मुक्ति आंदोलन का प्रस्थान बिंदु भारत के समाजवादी आंदोलन के चरम को चुना है। वह चरम बिंदु है- जब भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करनेवाली कांग्रेस थकी हारी सी थी और उसके नेतागण बड़े बेमन से महात्मा गांधी के नेतृत्व में अगस्त क्रांति में घिसट रहे थे, तब हजारीबाग जेल की दीवारों को धता बताकर समाजवादी गांधी और भारत की आम जनता के बीच सेतु बने थे। यही समाजवादी थे जो जेल से भाग कर नेपाल पहुंचे और वहां मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। नेपाल के मुक्ति आंदोलन को प्रशिक्षण और दिशा देने में जिन समाजवादियों की अग्रणी भूमिका रही, आखिर उनसे बेहतर उस अभियान का प्रस्थान बिंदु हो भी क्या सकता था। समाजवादी आंदोलन के प्रखर पत्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी के संपादन मे पटना से निकलनेवाली 'जनता' नेपाल आंदोलन का केंद्र बिंदु थी। यहां तक कि जब काठमांडू में पत्ता खडकता था तो उसका स्पंदन जनता के दफ्तर में सुनाई देती थी। उस आंदोलन में न केवल समाजवादी नेताओं बल्कि इस विचाारधारा के साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु और न जाने कितने लोगों ने अपना सर्वस्व दाव पर लगाया, इसका मोटा मोटी खाका भारती ने इस डायरीनुमा पुस्तक में सिलसिलेवार ढंग से किया है मानो वह पूरे आंदोलन का आंखोदेखा हाल बता रहे हैं। राणाशाही द्वारा नेपाल के हनुमान नगर जेल में बंद कर दिए गए जयप्रकाश नारायण

और अन्य समाजवादियों को मुक्त कराने के लिए राम मनोहर लोहिया व अन्य द्वारा जेल पर हमला, जेल से उद्धार और फिर आगे नेपाल में क्रांति की चिनगारी भड़का कर भारत की सीमा में लौट आने तक पूरा विवरण इस पुस्तक में है। जयप्रकाश की जीवनी में बेनीपुरी जी ने संभवतः इतनी गहराई में नहीं गए। राम हरख जैसे पात्र तो बेनीपुरी की आंखों से पूरी तरह ओझल हैं, जो वीपी कोइराला और बाद में नेपाल के ही होकर रह गए।

नेपाल की नियति भारत से भिन्न नहीं है। इस कथन को इस पुस्तक से निकले संदेश से भी पुष्ट किया जा सकता है। जिस तरह भारत छोड़ो आंदोलन के सभी लक्ष्य सत्तालोलुपता में डूब गए, नेपाल में भी उसकी आकांक्षाओं को पहले राणाशाही की तीन सरकार और बाद में महाराजा की पांच सरकार से मुक्ति के बाद आंदोलन के नेताओं ने धो डाला। कहना न होगा कि राणाशाही से आंशिक मुक्ति के बाद ही सत्ता में आए वीपी कोइराला ने आंदोलन के परम लक्ष्यों से किनारा करना शुरू कर दिया, जिसकी प्रतिक्रिया भारत में लोहियाजी में देखने को मिली और गृहमंत्री के रूप में भारत आए वीपी को उन्होंने पहचानने तक से इनकार कर दिया। रेणु जी के उपन्यास मैला आंचल में जो गति वामनदास की होती है, राम हरख की भी लगभग वही गति हुई, जिन पर फिल्म बनाकर दुनिया को दिखाने का संकल्प लेखक ने इस पुस्तक में किया है। पुस्तक राम हरख के माध्यम से पूरे नेपाल और बिहार-यूपी की आम जनता के दिलोदिमाग की संवेदना का प्रतिनिधित्व करती है। पांच अध्यायों (हालांकि अध्याय तीन ही तीन बार पुनरावृत्त हुआ है) और 24 खंडों में फैले इस पुस्तक की कथा-यात्रा लेखक राम हरख के साथ उनकी ही आंखों से देखकर करता है। बीच-बीच में नेपाल की जनता से, मुक्ति की आस में सब कुछ लुटा रही और बाट जोह रही जनता के साथ बड़े खिलाड़ियों के छल से उद्वेलित होकर कभी सुकट्ठीलाल से बात कर अपने मन को शांति देता है। ऐसी दृष्टि रखना भी शायद समाजवादी विचारों में पगे लेखक के लिए ही संभव है।

पुस्तक- नेपाल उर्फ लटठापार की डायरी
लेखक- रवीन्द्र भारती
प्रकाशन- शरारे प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य- 275 रु. पेपर बैक, पृष्ठ- 148,
प्रथम संस्करण, 2016

संपादक के नाम पत्र

सामयिक वार्ता मार्च- 2016 के अंक में छपे किन्हीं श्री प्रेम सिंह के लेख, 'सत्ता की दलाली में लोहिया का इस्तेमाल' को पढ़कर आश्चर्य हुआ। आई.टी.एम. यूनिवर्सिटी ग्वालियर द्वारा आयोजित 'डॉ. राममनोहर लोहिया स्मृति व्याख्यान माला' के प्रथम एवं द्वितीय व्याख्यान के वक्ताओं को लेकर श्री प्रेम सिंह की आपत्ति थी कि उस व्याख्यान माला का पहले से निर्धारित कोई विषय नहीं था जो कि तथ्यात्मक रूप से गलत है। प्रथम व्याख्यान के वक्ता उपराष्ट्रपति डॉ. हामिद अंसारी का विषय था 'लोकतंत्र और असहमति' द्वितीय व्याख्यान का संबोधन गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह का था, जिसका विषय था 'लोहिया की सांस्कृतिक दृष्टि'।

डॉ. हामिद अंसारी के भाषण को लिखित रूप में श्रोताओं में अग्रिम रूप से वितरित कर दिया गया था जिसकी एक प्रति हम आपको भी भेज रहे हैं।

श्री प्रेम सिंह की दूसरी आपत्ति थी कि 'व्याख्यान माला के वक्ताओं का लोहिया के चिन्तन पर उनके अध्ययन और समझदारी का पूर्व प्रमाण नहीं मिलता।' श्री प्रेम सिंह को इतना तो ज्ञात होगा ही कि किसी भी महापुरुष के नाम पर होनेवाली व्याख्यानमाला का विषय कुछ भी हो सकता है और यह भी जरूरी नहीं है कि महापुरुष से संबंधित ही हो और वक्ता के विचार उनके या हमारे अनुकूल ही हों।

उपराष्ट्रपति माननीय डॉ. हामिद अंसारी का भाषण विद्वतापूर्ण होने के साथ-साथ डॉ. लोहिया को केन्द्रित करके दिया गया था। मूल भाषण अंग्रेजी में था। श्री प्रेम सिंह जैसे हिन्दी विद्वान के लिए हिन्दी में अनुदित रूप में भी था। पाठक उसको पढ़कर अंदाजा लगा सकते हैं कि वह किस स्तर का था?

द्वितीय व्याख्यान- 2016 का अध्यक्षीय भाषण अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव प्रोफेसर जनार्दन द्विवेदी संसद सदस्य ने दिया था। जिनका लोहिया ज्ञान श्री प्रेम सिंह जैसों से बहुत आगे का है।

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री रमाशंकर सिंह विद्यार्थी जीवन से ही 1969 से समाजवादी युवजन सभा के प्रमुख संघर्षशील साथी रह चुके हैं। डॉक्टर लोहिया के विचारों से प्रभावित होने के कारण उन्होंने अपने विश्वविद्यालय के एक सभागार का नामकरण 'डॉ. राममनोहर लोहिया सभागार' रखा है। श्री प्रेम सिंह के चिन्तन के लिए एक और सूचना देना आवश्यक है कि यह विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश अथवा बिहार में नहीं है, मध्य प्रदेश में है, जहां लोहिया विचार से प्रभावित सरकार सत्ता में कभी नहीं रही। विश्वविद्यालय के एक अन्य सभागार का नामकरण समाजवादी नेता मधु लिमये के नाम पर किया गया है, जिसका उद्घाटन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव स्मृतिशेष कॉमरेड ए.बी. वर्धन द्वारा किया गया था। अगली व्याख्यान माला का वक्ता कौन हो 'लोहिया विशेषज्ञ' श्री प्रेम सिंह अपना नाम भी अगर दे दें तो हमारी समिति को उस पर विचार करने में भी संकोच न होगा।

प्रेम सिंह अपनी टीका का साठ प्रतिशत भाग नवउदारवाद जैसी घुमावदार परिभाषा से गरियाते हुए अपनी नव असहिष्णुतावाद, नकारात्मकता और पूर्वाग्रह से भरे हुए अपनी गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं कि निजी मुनाफे के लिए चलाये जानेवाले शिक्षा संस्थानों को डॉ. लोहिया जैसे नामों के इस्तेमाल की छूट नहीं दी जानी चाहिए, वाह रे लोहिया के ठेकेदार।

यह कैसा शोधपूर्ण अकादमिक ज्ञान है कि बगैर प्रत्यक्ष तथ्यपूर्ण जानकारी के किसी भी संस्थान या न्यास की गतिविधियों पर अपने पूर्वाग्रह का ठप्पा लगा दिया जाए?

क्या प्रेम सिंह को यह मालूम है कि आईटीएम विश्वविद्यालय ग्वालियर ने कला, संगीत, संस्कृति, शिल्प, शोध व प्लेसमेंट में भारत की सबसे युवा यूनिवर्सिटी के नाते एक बड़ा काम किया है और महज पाँच वरसों में ही इसकी राष्ट्रीय रैंकिंग शासकीय विश्वविद्यालयों व संस्थानों के मध्य भी बहुत ऊंची है, सर्वश्रेष्ठ 100 में 32वीं व 68वीं।

अब संक्षिप्त रूप से 'दलाली' के बारे में भी जान लें।

पिछले चालीस बरसों के राजनीतक-सामाजिक जीवन में आईटीएम विवि के कुलाधिपति श्री रमाशंकर सिंह युवा समाजवादी के नाते उन पहले कार्यकर्ताओं में से थे जिन्हें 1977 में ही राज्य सरकार में भागीदारी करने का अवसर भी मिला और कई अवधियों में राज्य विधानसभा की अनेक समितियों के प्रमुख और तदंतर केंद्रीय सरकार की स्वायत्त संस्था के अध्यक्ष पद पर भी रहे। म. प्र. के तेजस्वी धारदार युवा विधायक के रूप में उनकी ख्याति रही है। इतना ही नहीं 1969 से 1980 के मध्य की अवधि में देश के शीर्ष नेताओं के सर्वप्रिय कार्यकर्ता भी रहे, जिनमें किशन पटनायक जी भी थे। मध्य प्रदेश में समाजवादियों का नगण्य अस्तित्व है और ऐसी विपरीत स्थिति में लोहिया विचार की प्रखर अभिव्यक्ति के साथ-साथ एक रचनात्मक कार्य को दो दशाब्दियों से गुणवत्तापूर्वक चलाना बेशक एक साधारण समाजवादी के लिए चौंकाने वाला जरूर हो सकता है।

श्री प्रेम सिंह की प्रतिक्रिया की हमें परवाह नहीं होनी चाहिए लेकिन लोहिया स्मृति व्याख्यानमाला अनवरत चलती रहनी चाहिए।

अभिषेक, लश्कर, ग्वालियर

पश्चिम बंगाल संबंधी राजनैतिक प्रस्ताव

(समाजवादी जनपरिषद के 11वें राष्ट्रीय सम्मेलन में जो कि जटेश्वर, जिला अलीपुर दुआर, विस्तार से चर्चा के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुआ)—

मा.क.पा. सरकार को 34 साल के लंबे कार्यकाल की दमनकारी नीतियों के कारण, एवम् सिंगूर व नंदीग्राम में हुए कार्पोरेट विरोधी जन आंदोलन के कारण, जनता ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के बदले तृणमूल कांग्रेस पार्टी (टी.एम.सी.) कोचुना। मगर उसके पहले कार्यकाल के शासन में ही चिटफ्रन्ड, नारद व शारदा घोटालों में उसके मंत्री व नेतागण लिप्त पाये गये। मा.क.पा. की तरह से टी.एम.सी. ने भी अपना शासन बनाये रखने के लिए विपक्षी यूनियनों एवं संगठनों पर हमला बोल दिया।

पराकाष्ठा अब यह होरही है कि शासक दल में गुटबाजी व अन्तर्कलह शुरू हो गया है। राज्य की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी स्वयं मुस्लिम वोटों को पक्का करने के लिए मस्जिद में ''नमाज'' पढ़ रही हैं। इसके कारण हिन्दू कट्टवादियों को सरकार की मुस्लिम तुष्टीकरण नीति के बारे में चर्चा को हवा मिली है।

उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य में भा.ज.पा. की भारी जीत से बंगाल के हिन्दुत्ववादी शक्तियों को सहारा मिला है, हालाँकि वह जीत 42% वोटों से ही मिली है। टी.एम.सी. के बढ़ते आधार को रोकने के लिए माकपा ने चुनाव के पहले कांग्रेस से गठबंधन बनाया परन्तु वामफ्रंट के सभी सदस्य इस गठनंधन से खुश नहीं थे।

कांग्रेस जैसे ''नई'' आर्थिक नीति की प्रबल समर्थक है, वैसे ही माकपा मानती है कि सिंगूर-नन्दीग्राम में उन्होंने कोई भूल नहीं की। टी.एम.सी व भाजवा राज्य व केंद्र मैं शासक दल दोनों ही कार्पोरेट-पोषक नीतियों को लागू कर रहे हैं।

बंगाल राज्य वर्तमान समय में पी.पी. (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) मॉडल पर विकास कार्य हो रहा है। शिक्षण संस्थान, अस्पताल, राजमार्ग, बाजार इत्यादि सभी जगह निजी कार्पोरेट शक्तियों की घुसपैठ दिखती है। विकास के नाम पर राज्य सरकार विभिन्न जातिसमूह व भाषायी समूहों के नाम से 'विकास परिषद' गठन कर चुकी है। इससे तात्कालिक रूप से भाषायी व जाति-विशेष के आंदोलन शिथिल पड़ रहे हैं, अतः वास्तविक विकास अगर नहीं हुआ तो बढ़ता असंतोष जनता को गृहयुद्ध की तरफ भी ले जा सकता है। इन आंदोलनरत श्रमिक समूहों के बीच में बातचीत व विचार-विनिमय से एक नई राजनैतिक चेतना व राजैतिक एकता विकसित हो सकती है।

देश के विभिन्न राज्यों में हिन्दुत्ववादी राजनैतिक शान्ति का उभार हुआ है। बंगाल पर भी इसका असर दिख रहा है। भाजपा यही हिन्दू-मुस्लिम परस्पर संदेह, अविश्वास-भावना का राजनैतिक लाभ लेना चाह रही है। माकपा अपने शासनकाल में जातिगत विभेद को बढ़ावा देती थी— सूक्ष्म तरीके से टी.एम.सी. वर्तमान में इन जाति के भाषाई समूहों का तुष्टीकरण कर रही है मगर भाजपा धर्मों के बीच ध्रुवीकरण तीव्र करना चाह रही है। अगर भाजपा सफल हुई तो भारतीय व अंतर्राष्ट्रीय पूँजीपतियों को खुले लूट की छूट मिलेगी।

इन कार्पोरेट शक्तियों का मुनाफ़ाखोरी धंधा सारे किसान, मजदूर जनता को शोषणयंत्र में पीस डालेगा।

भोगवादी संस्ककृति, मानवीय प्रेम,प्रीति व मातृत्वबोध की हत्या कर, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष बढ़ाकर हिंसक माहौल बना रहे हैं। ऐसे वक्त में, प्रगतिशील, लोकतांत्रिक पूँजीवाद विरोधी व अहिंसा में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों व समूहों का एकत्रित होना बहुत ज़रूरी है। समाजवाद को केन्द्र में रखकर जो भी समूह स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, चाय बागान के मजदूरों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, उन्हें एकत्रित करने का काम समाजवादी जनपरिषद को करना चाहिए।

प्रस्तावक— रणजीत कुमार राय, समर्थन— अखिल बन्धु सरकार।

●

चंचल मुखर्जी, पाण्डेय हवेली, वाराणसी-221001 द्वारा प्रकाशित एवं दी महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित